नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 1 अंक 10-11 (संयुक्तांक)
नवम्बर-दिसम्बर 1999 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

सुप्रीम कोर्ट के फैसले से

दिल्ली के 1,37,000 लघु उद्योगों के सिर पर बन्दी की तलवार

पर्यावरण की चिन्ता या 15 लाख से भी अधिक मजदूरों की रोजी छीन लेने की साजिश?

दिल्ली का हवा-पानी दुरुस्त करने के नाम पर मजदूरों पर कहर बरपा करने की तैयारी न्यायपालिका की मदद से एक बार फिर पूरी हो चुकी है। पिछली बार पर्यावरण शुद्ध करने के नाम पर कुल 168 कारखाने बन्द कर दिये गये थे और 50,000 मजदूरों के परिवारों को बेकारी-तबाही के गार में झोंक दिया गया था।

इस बार जिस हमले की तैयारी है, उसकी विकरालता के आगे पिछला ''पर्यावरण-सुधार'' तो कुछ भी नहीं था। वह तो महज एक बानगी था। सुप्रीम कोर्ट के विगत आठ सितम्बर के आदेश के मुताबिक दिल्ली के रिहायशी और नॉन-कन्फार्मिंग इलाके में चल रही कुल 1 लाख 37 हजार लघु औद्योगिक इकाइयों के सिर पर बन्दी की तलवार लटक रही है, जिसकी कीमत. कम से कम 15 लाख मजदूर बेकार होकर चुकायेंगे।

सुप्रीम कोर्ट ने एक जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए गत 8 सितम्बर को यह फर्मान जारी किया कि अगले तीन महीनों के भीतर रिहायशी और नॉन-कन्फार्मिंग इलाकों में चल रहे कारखानों को या तो नियमित औद्योगिक क्षेत्रों में हटा दिया जाये, या फिर बन्द कर दिया जाये। पुन: 13 सितम्बर को कोर्ट ने एक और आदेश जारी किया कि एक नवम्बर के बाद कारखानों का प्रदूषित पानी यमुना में न गिराया जाये (फिर यह मोहलत 31 दिसम्बर तक बढ़ा दी गई।)

सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से जुड़ा हुआ **पहला सवाल तो यही है कि इस फैसले के पीछे क्या वाकई मामला पर्यावरण-प्रदूषण का है?** पर इस सवाल पर विचार से पहले कुछ और तथ्यों पर गौर करना जरूरी है।

सम्पादकीय अग्रलेख

यूं तो दिल्ली सरकार ने लघु उद्योगों को हटाने के लिए दिसम्बर अन्त तक की समय-सीमा को आगे खिसकाने के लिए सुप्रीम कोर्ट से कुछ और समय मांगने का फैसला किया है, पर यह समस्या का समाधान नहीं, बल्कि चुनावी लोकलुभावन राजनीति के तकाजों और एक साथ बेकार होने वाले लाखों मजदूरों के क्रोध के संभावित विस्फोट की आंच से दिल्ली को बचाने की चिन्ता और भय के कारण लिया गया फैसला है। जो मूल समस्या है, उस पर आज ही विचार करना बेहद जरूरी है।

सबसे पहले 1997 में सुप्रीम कोर्ट ने रिहायशी इलाकों में चल रहे उद्योगों को बंद करने का निर्देश दिया था। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के पीछे मुख्यत: दिल्ली सरकार की हाई पावर कमेटी द्वारा दी गई गलत जानकारी था। इस कमेटी को प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों की पहचान करनी थी। इसने लघु उद्योगों से उत्पादन के प्रकार, परिमाण, बिजली की खपत, श्रमिकों की संख्या आदि से सम्बन्धित जानकारी मांगी और 43 हजार इकाइयों ने ये आंकड़े मुहैया कराये। लेकिन कमेटी ने प्रदूषण-सम्बन्धी जानकारी जुटाने के बजाय सारी इकाइयों का वर्गीकरण भौगोलिक दृष्टि से कर दिया और दिल्ली मास्टर प्लान के मुताबिक कंफार्मिंग और नॉन-कन्फार्मिंग इलाकों में चल रही इकाइयों को बंद करने की सिफारिश कर दी। इसके बाद लघु उद्योगों को स्थानान्तरित करने के लिए 1397 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया गया लेकिन 52 हजार आवेदनों में से 30 हजार को बिना कोई कारण बताये निरस्त कर दिया गया। इसके बाद इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। इसके बाद सुप्रीम कोर्ट ने विगत 8 सितम्बर को नया आदेश जारी किया।

क्या वाकई यह सारी कसरत पर्यावरण की चिन्ता में हो रही है? बेशक पर्यावरण का प्रश्न एक गंभीर प्रश्न है। लेकिन न्यायपालिका को इसी की चिन्ता थी तो उसे सबसे पहले दिल्ली में निजी वाहनों से होने वाले प्रदूषण (जो सर्वाधिक होता है) को कम करने के लिए उनपर रोक लगाने और सार्वजनिक यातायात व्यवस्था को ठीक करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का निर्देश सरकार को देना चाहिए। दूसरी बात, अदालत ने खुद स्वीकार किया है कि यमुना के प्रदूषण के लिए सरकार और मिल-मालिक—दोनों ही जिम्मेदार हैं। सच तो यह है कि भाजपा और कांग्रेस की सरकारों ने इस सम्बन्ध में कभी कुछ किया ही नहीं। प्रदूषित कचरे के निस्तारण व जल-शोधन के लिए 15 संयंत्र सरकार को लगाने थे, पर उनके लिए अभी तक जमीन भी नहीं ली गई है। कोर्ट के आदेशानुसार प्रदूषित कचरे का प्राथमिक निस्तारण कारखाने को ही करना था। पर कारखाना मालिकों ने अबतक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया और अब दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने यह नोटिस जारी किया है कि यदि दो माह के भीतर कारखानों में ऐसे प्लाण्ट नहीं लगे तो उन्हें बन्द कर दिया जायेगा।

चिकने-चुपड़े लाल गालों वाले सफेद कालरी बाबू लोग जब प्रकृति के विनाश और प्रदूषण-नियंत्रण की गहरी चिन्ता में बातें करते हैं तो उनसे यह पूछने को जी चाहता है कि **प्रदूषण-निवारण और पारिस्थितिक-सन्तुलन बहाल करना निहायत**

(पेज 12 पर जारी)

तराई के उद्योगपतियों की बैठक में होण्डा मजदूरों पर सीधा हमला

"कर्मचारियों से किसी समझौते की जरूरत नहीं"

(बिगुल संवाददाता)

काशीपुर (ऊधमसिंह नगर) 19 नवम्बर। 'कुमाऊं-गढ़वाल चैम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज' के तत्वावधान में यहां सम्पन्न जिला उद्योगबन्धुओं की बैठक में जहां उद्योगपतियों ने क्षेत्र के बहुराष्ट्रीय कारखाने 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स' में तालाबन्दी से जूझ रहे श्रमिकों के आन्दोलन को अवैध करार देने की उद्घोषणाएं कीं; और कर्मचारियों से आगे किसी भी प्रकार का करार न करने की सलाह दी, वहीं चैम्बर अध्यक्ष राजीव घई ने पुन: एक विज्ञप्ति के माध्यम से कह डाला कि चन्द स्वार्थी लोग श्रमिकों को भड़काकर व अशांति फैलाकर उद्योगों को बन्द कराने का प्रयास करके भोले-भाले श्रमिकों के रोजगार से खिलवाड़ करना चाहते हैं।

उल्लेखनीय है कि तराई क्षेत्र की जनरेटर उत्पादक बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'होण्डा-सील पावर प्रोडक्ट्स' के श्रमिक अपने उस त्रिवर्षीय वेतन समझौते के लिए संघर्षरत हैं जिसे विगत 1 जुलाई को हो जाना चाहिए था। श्रमिक यूनियन की तरफ से मांग पत्र देने के बावजूद प्रबन्धतन्त्र के कान पर जब जूं तक न रेंगी तो होण्डा श्रमिकों ने कारखाने के भीतर ही शान्तिपूर्ण आन्दोलन शुरू कर दिया। उधर प्रबन्धकों ने श्रमिकों को डराने-धमकाने के लिए नोटिसें थमानी शुरू कर दीं और किसी समाधान के न निकल पाने की स्थिति में श्रमिकों ने 9 सितम्बर से चार घण्टे का टूलडाउन आन्दोलन शुरू कर दिया था। जवाब में प्रबन्धकों ने पहले कैजुअल और प्रशिक्षु मजदूरों की छुट्टी कर दी, फिर यूनियन अध्यक्ष को निलम्बित और संयुक्त मंत्री सहित चार श्रमिकों को निष्कासित कर दिया, मजदूरों पर झूठे मुकदमे कायम किये और 14 अक्टूबर से कारखाने में आंशिक (सेवायोजन) तालाबन्दी करके सभी मजदूरों के कारखाने में प्रवेश पर ही प्रतिबन्ध लगा

(पेज 12 पर जारी)

इस अंक में विशेष

चीन की नवजनवादी क्रान्ति के अर्द्धशतीवर्ष के अवसर पर (पृष्ठ 6-7)
जनमुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा

अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगांठ के अवसर पर
अक्टूबर की हवाएं मरी नहीं हैं! वे फिर उठेंगी भयंकर तफ़ान बनकर! (पृष्ठ 8)

जन्मतिथि (28 नवम्बर) के अवसर पर
फ्रेडरिक एंगेल्स का लेख : कम्युनिस्ट समाज के बारे में कुछ बातें (पृष्ठ 5)

मजदूर नायक : क्रान्तिकारी योद्धा
बोल्शेविक मजदूर संगठनकर्ता इवान वसील्येविच बाबुश्किन (पृष्ठ 11)

देश के विभिन्न हिस्सों में फर्जी मुठभेड़ों में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की हत्या

दमन का पहिया फिर रफ्तार पकड़ रहा है!

सरकारी आतंकवाद के खूनी पंजे, पूंजीवादी लोकतंत्र का चिथड़ा झण्डा और भाजपा सरकार के फासिस्ट चरित्र का नंगापन

दमन का पहिया एक बार फिर घरघराहट के साथ रफ्तार पकड़ने लगा है। सरकारी आतंकवादी मशीनरी बड़े ही योजनाबद्ध ढंग से अपनी ही व्यवस्था के कानूनों की धज्जी उड़ाते हुए लगातार राजनीतिक हत्याओं में लगी हुई है, जिसके शिकार मुख्यत: देश के विभिन्न हिस्सों में काम करने वाले कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के कार्यकर्ता हो रहे हैं।

विगत दो महीनों के भीतर आन्ध्र प्रदेश, बिहार और देश के विभिन्न हिस्सों में ''मुठभेड़ों'' के नाम पर क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं की हत्याओं के कई समाचार पूंजीवादी राष्ट्रीय अखबारों के कोने-अंतरे में नजर आते रहे। पर वास्तविकता उससे कहीं अधिक भयावह है। मुठभेड़ों की बहुतेरी खबरें तो स्थानीय-क्षेत्रीय अखबारों में ही छपकर रह जाती रही हैं। ऐसी खबरों के प्रति राष्ट्रीय बुर्जुआ अखबार आम तौर पर 'ब्लैक आउट'' का रवैया अपनाते हैं।

फर्जी मुठभेड़ें, फर्जी मुकदमे और दमन का आतंकराज : उत्तर से दक्षिण तक पूरे देश में

ऐसी घटनाओं में हाल की सर्वाधिक 'बर्बर घटना दिसम्बर माह के प्रारम्भ में हुई जब आन्ध्र प्रदेश की हत्यारी पुलिस के विशेष दस्ते ने बंगलोर में एक बैठक में शामिल भा.क.पा. मा-ले (पीपुल्सवार) संगठन की केन्द्रीय कमेटी के तीन सदस्यों को वहीं गोली मार दी और फिर उनके शवों को हेलीकॉप्टर से आन्ध्र के जंगलों में पहुंचाकर यह प्रचार किया गया कि ये तीन ''दुर्दान्त नक्सलवादी'' वहीं मुठभेड़ के दौरान मारे गये। गोदावरी घाटी, आन्ध्र व सीमावर्ती म.प्र.-महाराष्ट्र के जंगलों में दमन का नंगा नाच जारी है। तरह-तरह के ''नक्सलवाद-विरोधी बलों'' को फर्जी मुठभेड़ों की खुली छूट है। क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं, यहां तक

(पेज 10 पर जारी)

आपस की बात

पहचानो! कौन पाजी?

आज कल दैनिक समाचार पत्रों पर सरसरी तौर पर नजर मार लेने से एक 'भयावह' सचाई सामने आ खड़ी हो रही है। तराई क्षेत्र का एक अग्रणी उद्योग 'होन्डा-सील पावर प्रोडक्टस' "मजदूरों द्वारा जबरन लादी गई" ताला बंदी का शिकार हो रहा है। उधर उद्योगपतियों की संस्था 'हिमालयन चैम्बर आफ कामर्स एन्ड इन्डस्ट्रीज' जिसे मैं संक्षेप में 'हिचकी' कहूंगा, उनका मानना है कि इस क्षेत्र में कुछ शरारती तत्व अशान्ति फैलाना चाह रहे हैं। वही लोग मजदूरों को उकसा कर आन्दोलन की तरफ ठेल देते हैं। हिचकी का यह भी मानना है कि इससे मजदूरों और उद्योगपतियों का भयंकर नुकसान होता है। जबकि पूंजीपतियों का एक अन्य मंच 'कुमाऊं-गढ़वाल चैम्बर आफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज' का मानना है कि चन्द स्वार्थी तत्व श्रमिकों को भड़काकर अशान्ति फैलाते हैं।

हालांकि मैं भी 'हिचकी' की इस शिकायत से सहमत हूं कि जो लोग मजदूरों को आन्दोलन की तरफ ठेलते हैं वे शरारती हैं, स्वार्थी हैं या कहें कि पहले दर्जे के 'पाजी' हैं। खुद उद्योग बंधु की एक बैठक में एक फैक्ट्री के महाप्रबंधक ने आरोप लगाया है कि होन्डा के प्रबंध तंत्र की "करतूतों" की वजह से ही उनकी फैक्ट्री में हड़ताल हुई—ठीक, पहला पाजी! होंडा प्रबंधतंत्र पहचाना गया। वहीं क्षेत्र के तमाम जन हितकारी संगठनों का यह मानना है कि उक्त कारखाने के प्रबंधक महोदय मजदूरों का इतना उत्पीड़न और शोषण करते हैं कि मजदूर हड़ताल के लिए बाध्य होते हैं—पाजी को पहचान रहे हैं न? वैसे इस बार होन्डा की तालाबंदी किसी हड़ताल की वजह से नहीं हुई है। दरअसल होन्डा प्रबंधन और होन्डा मजदूर यूनियन ने अतीत में तय किया था कि भविष्य में मजदूरी हर तीन वर्ष पर होने वाले 'श्रम और उत्पादकर्ता करार' के आधार पर तय होगी। इस बार भी एक नियत तिथि तक करार नहीं हो पाया, अत: मजदूर यूनियन दबाव बना रही थी दबाव प्रबंध तंत्र भी बना रहा है, अन्तत: तालाबंदी द्वारा। अब ऐसी दशा में यह कहना कि प्रबंधतंत्र एक दूध पीते बच्चे की तरह निर्दोष है, यही दर्शाता है कि वक्ता या तो मूर्ख है या पाजी। पहचान गए न?

इधर अखबारों में एक और खबर है कि होन्डा सील कार्पोरेशन 28 लाख रुपये खर्च कर एक गोल्फ मुकाबले का आयोजन कर रही है। इस मुकाबले में लाखों रुपये और एक कार पुरस्कार स्वरूप दी जा रही है। यह वही होन्डा कम्पनी है जो तराई क्षेत्र के अपने मजदूरों की मांगों को पूरा करने की जगह पर, उनके सर पर न केवल तालाबंदी का पत्थर पटक चुकी है, बल्कि केवल यह दर्शाने के लिए कि मजदूरों के बिना भी फैक्ट्री चल रही है, अकुशल स्टाफ (क्लर्क) आदि से उत्पादन करा कर घटिया उत्पाद बनाकर कच्चा माल बर्बाद कर रही है।

यह संस्थान एक तरफ मजदूरों को सड़क पर ठेलने पर आमादा है, वहीं धनपशुओं के नौनिहालों के खेल कूद के मात्र एक आयोजन पर 28 लाख रूपये फूंक चुका है। हो सकता है कि अपने मनचाहे आदेश तथा कार्रवाइयां करवाने के लिए नौकरशाही पर कहीं इससे अधिक रकम खर्च की गई हो। एक तरफ मजदूरी देने में कोताही, दूसरी तरफ आमोद-प्रमोद पर लाखों का वारा न्यारा—ऐसी ही दशा के लिए कबीरदास जी ने कहा था—

जंह सतवंती गज्जी पहिनै,
बेस्वा पहिनै खासा।
जेहि धर साधु भीख न पावै,
भंडुआ खांय बताशा।

—भूपेश कुमार, पंतनगर

क्यों कर रहे हैं लोग आत्महत्याएं

"बेटी की भूख और पति की बीमारी से टूटी तो खुद को आग लगा ली..." "युवक ने आर्थिक तंगी के कारण नहर में डूब कर जान दी..." "पुत्रियों को जहर खिलाया और खुद आत्महत्या कर ली..." "ग्यारहवीं में प्रवेश न मिलने से निराश हल्द्वानी के एक किशोर ने खुदकुशी की..."

इन दिनों लगभग प्रतिदिन समाचार पत्रों में छोटी-बड़ी ऐसी खबरें पढ़ने को मिल रही हैं। एक प्रश्न जो बार-बार कौंधता रहता है कि आखिर वे कौन से कारण हैं जो उन तमाम लोगों को खुद या पूरे मासूम परिवार की इहलीला समाप्त करने के लिए विवश कर रहे हैं?

अभी कल के ही समाचार पत्र में छपी एक खबर है-"संजय नगर खेड़ा (रुद्रपुर) निवासी, बदहाली से लाचार व तपेदिक (टी.बी.) से पीड़ित 35 वर्षीय तारापद मण्डल ने फांसी लगाकर जान दी..." तारापद ने जिन्दगी को दांव लगाकर अपने समग्र कष्टों से, अपनी गरीबी से छुटकारा पा ली। एक ऐसी बीमारी जो कि अब असाध्य नहीं रह गयी है (लेकिन किसके लिये?)। एक ऐसा रोग जिससे देश में लगभग 1.5 करोड़ पीड़ित हैं और जिनमें से लगभग 5 लाख रोगी प्रतिवर्ष मृत्यु को प्राप्त होते हैं! लेकिन जिस गरीबी और जिस बीमारी से पीड़ित तारापद ने मुक्ति पायी है, क्या वे कारण भी समाप्त हो गये?

सच्चाई यह है कि आत्महत्याओं की घटनाएं इधर लगातार बढ़ती ही चली गयी हैं। पिछले दो वर्षों में कर्ज के बोझ से लदे और पैदावार से कर्ज का ब्याज भी न चुका पाने के कारण आंध्र, महाराष्ट्र से लेकर देश के विभिन्न हिस्सों से किसानों की आत्महत्या की घटनाएं लगातार बढ़ती चली गयी हैं। 'राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो' (एन.सी.आर.बी) द्वारा तैयार किये गये ताजा सर्वे रिपोर्ट के तहत देश में प्रत्येक एक लाख की आबादी पर औसतन 10.3 लोग आत्महत्यायें कर रहे हैं। एन सी आर बी के अनुसार 1997 में देश में आत्महत्या की 95,229 घटनाएं प्रकाश में आयी जिनमें से 8,961 घटनाएं महज केरल में हुई हैं। ध्यान रहे कि ये वे आंकड़े हैं जो कहीं न कहीं दर्ज हुई होंगी! इनसे काफी ज्यादा वो घटनाएं हैं जिनपर चर्चा तक नहीं होती।

हाल में, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'स्टैस्टिकल पाकेट बुक इण्डिया 1998' ने भूख और प्यास से होने वाली मौत तथा अचानक पैदा हुई आर्थिक विषमताओं (जाहिरा तौर पर जन विरोधी नयी आर्थिक नीतियों के कारण), दिवालियेपन, गरीबी व बेकारी से तंग और अंधकारमय भविष्य की आशंका से ग्रसित लोगों की आत्महत्याओं के आंकड़े

(पेज 3 पर जारी)

"मैं मजदूर हूं"

मैं मजदूर हूं
जीवनबद्ध श्रम शक्ति की इकाई
आदमी के बनैलेपन से लेकर आज की शिष्ट सभ्यता तक की
सीढ़ियों पर मेरे हथौड़े की चोट है।
जमाने ने करवट ली है।
पर मैंने कभी पीठ नहीं लगाई
सुस्ताने के लिए कभी फावड़े नहीं टेके
मेरे बाजू पर जमाना टिका है।
अगर हम मजदूर कंधे डाल दें तो गजब हो जाये
दुनिया लड़खड़ा कर गिर जाये
जमाने का दौर बन्द हो जाये
पर कंधे नहीं डालता, न डालूंगा।
मैंने निरन्तर निर्माण किया है विध्वंस न करूंगा
यदि करना हुआ तो पुन:निर्माण करूंगा
जिसके लिए मुझे कभी थकान नहीं महसूस होती है।
रोआं-रोआं फड़कता रहता है।
मैंने पहाड़ काटा चट्टानें खोद कर तांबा निकाला
सोना चांदी लोहा कोयला हीरा पाताल में घुसकर निकाला।
नरक जैसी रातों की अँधियारी लिये खानों में उतरता हूं मैं ही
पत्थर काटकर अपने मालिकों के लिए सोना निकालता रहता हूं।
लोहे से जमीन की छाती काड़ फाड़कर मैंने ही चमकते
हीरे निकाले हैं।
और आज भी निकाले जा रहा हूं।
पर इस हीरे की चमक के नीचे मेरी काली अँधियारी जिन्दगी है।
मेरी खोदी जमीन को घेरे शेर जैसे खूंखार कुत्ते खड़े रहते हैं।
मैंने जंगलों को काटकर पत्थर की जैसी जमीन खोद कर नरम
मुलायम बनाया।
उसे जोत बोकर हरा कर दिया
इस भूमि पर मैंने ही दुर्ग-किले खड़े किये
मैंने दुनिया का पेट भरा अपना पेट काट कर।
संसार को अघा देने वाली उपज पैदा की और खुद भूखा रहा।
पूंजीपतियों के लिए आसमान चूमने वाली इमारतें खड़ी कीं
और यह दुनिया मेरी झोपड़ियों से घृणा करती है।
मैं जमीन खोद कर उसे जोत बोकर सोना उगलने पर
मजबूर करता हूं।
मेरे श्रम द्वारा कारखानों मिलों का दैत्य कोलाहल के साथ
धुआं उगलने लगता है।
उनकी चिमनियों की छाया में रात दिन पसीना बहाता
आ रहा हूं मैं।
जब मशीन की चपेट में आकर अपाहिज हो जाता हूं।
तो मेरा नाम रजिस्टर से खारिज कर दिया जाता है।
जब मशीन की चपेट से गिर कर उठ नहीं पाता हूं तो
सड़क के कूड़ों में डाल दिया जाता है।
मेरी व मेरे बच्चों की जवाबदेही न सरकार की है न
मालिकों की। इनका भरण-पोषण कौन करेगा?
कौन ऐसी वस्तु है जो मजदूर ने तैयार न की हो।
मेरे श्रम द्वारा कारखाने अमित मात्रा में माल उगल रहे हैं।
मैं तृण से ताड़ बनाता हूं
नगर को ढो सकने वाले जहाज से लेकर
सुई तक ऐसी कोई महान या अदनी वस्तु नहीं है जो मैंने
न बनाई हो।
निर्जीव वस्तुएं मेरे स्पर्श के जादू से जीवन धारण कर लेती हैं
पर यह सब कुछ मेरे लिए क्यों नहीं है?
मैं इनमें से तिनका भी नहीं ले पाता हूं
क्या ये मिलें जिनमें मैं खाने पहनने का अपार माल तैयार
करता हूं मेरा पेट नहीं भर सकतीं?
इसका उत्तर भला कौन देगा, इन्हें जो बनाता हो यानी मैं या
जिनके लिए मैं बनाता हूं वे?
मैं पूछना चाहता हूं इस पूंजीवादी समाज के लोगों से,
इस पूंजीवादी देश की सरकार से,
क्या मैं इन सब वस्तुओं का हकदार नहीं हूं?

—गौरी शंकर आर्य
बुंदेलखण्ड ग्रामीण मजदूर यूनियन, ब्लाक निबाड़ी,
जि. टीकमगढ़, म.प्र.

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों का नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में महत्योगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

• शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर**, मऊ • मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज) मऊनाथभंजन, मऊ • जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** • विजय इन्फार्मेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** • विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, **बड़हलगंज**, गोरखपुर • ओमप्रकाश, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** • जनचेतना स्टाल, निकट काफी हाउस, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 7) • राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, **लखनऊ** • विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** • देवेन्द्र प्रताप, द्वारा श्री इन्द्र सिंह रावत, आल्मा काटेज, 7, मल्ली ताल, **नैनीताल** • विजय कुमार, 55/3 ई.डब्लू.एस., आवास-विकास कालोनी, **रुद्रपुर**, ऊधमसिंह -नगर • रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, **रुद्रपुर**, ऊधमसिंह -नगर • रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, **पन्तनगर** • प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, लंका, **वाराणसी** • राजीव वर्मा, द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी.82, पटेलनगर, **मुगलसराय** • राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, **रेणुकूट**, सोनभद्र • सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, 9, रफी मार्ग, **नई दिल्ली** • **ललित सती, एल.आई.सी, फैज रोड शाखा, दिल्ली** • डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केन्द्र, विकास भवन, कलक्ट्रेट, **गाजियाबाद** • एस.के. शर्मा, 282 बी, रेलवे कालोनी, गढ़हरा, **बेगूसराय** • सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, **बोकारो** • गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, **बेगूसराय** • पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** • समकालीन प्रकाशन (प्रा) लि., पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** • विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक, नेपियर टाउन, **जबलपुर** • नरभिण्डर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुंदल, ग्रा./पो. **संतनगर**, जिला-**सिरसा** • राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग** • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** • शर्मा बुक स्टॉल, थाना रोड, चैराली, **तिनसुकिया**

नेपाल • पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री-वितरण केन्द्र, डिल्ली बाजार, ओकालो, **काठमांडू** • विशाल पुस्तक सदन, विजुआर बाजार, **प्यूठान**, राप्ती अंचल • विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल • विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, घुटवल, रुपनदेई

अंततोगत्वा बीमा विधेयक संसद में पारित : उदारीकरण मुहिम का फैसलाकुन मुकाम

• ललित सती

अंततोगत्वा बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण (आई.आर.डी.ए.) विधेयक को हिन्दुस्तान की संसद ने ध्वनिमत से पारित कर दिया। इसके साथ ही बीमा क्षेत्र में देशी-विदेशी पूंजीपतियों के प्रवेश के लिए रास्ता साफ कर दिया गया है। इस विधेयक को पारित करवा कर भाजपा की "राष्ट्रवादी" सरकार ने न केवल भारतीय पूंजीपति वर्ग और साम्राज्यवादी वित्तीय शहंशाहों से किये वायदे को निभाया है बल्कि उसने निस्सन्देह उदारीकरण मुहिम के सबसे फैसलाकुन कदमों में एक कदम उठा लिया है। और देश को इक्कीसवीं सदी में ले जाने की दिशा तय कर ली है।

इस दशक की शुरुआत में देश के हुक्मरानों ने जब पूंजीवादी आर्थिक ढांचे को नई शक्ल देने का काम हाथ में लिया था तभी यह तय हो गया था कि वित्तीय क्षेत्र के सार्वजनिक उपक्रमों—यानी बैंक-बीमा में निजीकरण-उदारीकरण की नीतियां प्रभावी ढंग से लागू की जानी हैं। और यही कारण था कि सन् '90 के बाद जो भी दल या गठबंधन सत्ता में आया उसने नई आर्थिक नीतियों पर अमल करते हुए इस प्रक्रिया को आगे ही बढ़ाया। कांग्रेस ने बीमा क्षेत्र में मल्होत्रा कमेटी का गठन कर आई.आर.डी.ए. बिल का आधार तैयार किया। संयुक्त मोर्चा सरकार (जिसमें मेहनतकशों के स्वयंभू मसीहा चुनावी वामपंथी दलों की भी भागीदारी थी) ने न सिर्फ इस बिल को पेश किया बल्कि उसके वित्तमंत्री ने विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के साथ सेवा क्षेत्र खोलने का समझौता भी कर लिया। भाजपा की सरकार ने तो इस बिल को पारित करवाने में जो एड़ी-चोटी का जोर लगाया और जो तत्परता दिखाई वह काबिले-गौर है। उसने अपने को कांग्रेस से बेहतर स्वामीभक्त साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यह और बात है कि इस चक्कर में उसकी "राष्ट्रभक्ति" का और उसके "स्वदेशी" का असली मुखड़ा उघड़ गया।

दो दिसम्बर को लोकसभा में बिल पारित हो रहा था तो कांग्रेस ने विधेयक को पारित कराने में सरकार का सहयोग किया। जबकि संसदीय वामपंथी, सपा, राजद, व रिपब्लिकन पार्टी के सदस्यों ने 'वाकआउट' कर विरोध की रस्म पूरी की। जाहिरा तौर पर इसी तरीके से यह बिल पास हो सकता था और इसी तरीके से नपुंसक विरोध किया जा सकता था। अपने "वामपंथी" भाइयों के द्वारा विधेयक को राष्ट्रविरोधी करार देने संबंधी आरोप पर वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा ने स्पष्ट कर दिया कि बाजपेयी सरकार न तो किसी बाहरी और न ही किसी अंदरूनी दबाव में काम कर रही है। सरकार अपने विवेक से समय की जरूरत को देखकर यह निर्णय ले रही है। जाहिर है कि बहसबाजी के अडडे में इतनी बहस होने के बाद वामपंथी भाइयों के पास यही सुरक्षित रास्ता बचता है कि रूठ कर वाकआऊट कर जायें और उंगली कटाकर शहीदों में अपनी गिनती कराने का जतन करें।

सभा के दौरान बीमा कर्मचारी लगातार नारेबाजी करते रहे। एक अराजकता का माहौल बना रहा। असंतोष, आक्रोश और ठगे जाने का मिश्रित भाव उपस्थित जन समूह के चेहरों पर था।

यह आज के समय की त्रासद विडम्बना है और मेहनतकश वर्ग का दुर्भाग्य है कि उसका नेतृत्व किसी न किसी संसदीय पूंजीवादी या सुधारवादी या कथित वामपंथी दल के साथ नत्थी है जिसके पास नई आर्थिक नीतियों का कोई विकल्प नहीं है। संसदीय वामपंथी और सुधारवादी भूमण्डलीकरण की आक्रामक आर्थिक नीतियों के विकल्प के रूप में देश के मेहनतकश अवाम के सामने नेहरू के पुराने 'पब्लिक सेक्टर' के पास कुछ और, पर इनके पास सिर्फ मजदूर कार्ड है। ये जानते हैं कि 'पब्लिक सेक्टर' खत्म होने पर ये कार्ड फीका पड़ जाना है। इसीलिए यदि ये कर्मचारियों-मजदूरों के आक्रोश को रस्मी कवायदों में बांधते हैं, अपनी दुकानदारी चौपट नहीं होने देना चाहते तो दूसरी तरफ कांग्रेस के साथ मिलकर सत्तासुख भोगने को भी तत्पर रहते हैं, बीमा बिल को राष्ट्रविरोधी तो कहते हैं लेकिन विरोध में वाकआउट से आगे बढ़कर कुछ करने में इनकी हालत खराब हो जाती है। ऐसे ही लोगों ने बीमा, बैंक, रेलवे, डाकतार जैसे सार्वजनिक उपक्रमों तथा अन्य क्षेत्र के मजदूरों की ताकत को बांटकर रखा है। जबकि नई आर्थिक नीतियों की मार सब पर एक जैसी पड़ रही है। यह तो उन क्षेत्रों की बात है जहां पर वामपंथी दावा करते हैं कि यहां हमारा 'होल्ड' है। तो फिर क्यों नहीं नई आर्थिक नीतियों के खिलाफ सबको एकजुट कर संघर्ष का लम्बा कार्यक्रम तय किया गया?

साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी के ध्वजपोत के आने का रास्ता साफ! जल्दी ही पूरा बेड़ा भी आ जायेगा!

वैसे, यह कहना ज्यादती हो जायेगी कि तथाकथित वामपंथियों ने संसद के भीतर ही इसका विरोध किया। उन्होंने संसद के बाहर भी इसका विरोध किया है। आइये इस विरोध पर भी एक नजर डाल लें। बीमा कर्मचारियों द्वारा किये गये आन्दोलनों में उन्होंने शिरकत की है। संसद मार्च में समय पर पहुंचकर खूब जमकर दहाड़े भी हैं। इस बार बिल पेश होने पर आयोजित संसदमार्च में वामपंथी नेताओं ने सक्रिय भागीदारी की। जिसमें प्रत्येक ने एल.आई.सी. व जी.आई.सी. के गुणगान किये और फिर पूरा जोर लगाकर सांसदों का आह्वान किया कि वे इस बिल को पास न होने दें। साथ ही उन्होंने सोनिया जी व अटल जी से अपील की कि वे अपने सांसदों से अन्तरात्मा की आवाज पर वोट देने के लिए कहें। पार्टी व्हिप न जारी करें। बीमा कर्मचारियों से उन्होंने कहा कि संघर्ष जारी रखें, चिंता की कोई बात नहीं, लेकिन किसी वक्ता ने यह नहीं स्पष्ट किया कि बिल पास होने के बाद संघर्षों की रूपरेखा व दिशा क्या होगी? किसके लिए संघर्ष होगा? (नौकरी बचाने के लिए?) यही कारण था कि इस संसद मार्च में बीमा कर्मचारी मंच (जिस पर कुछ भाजपा व कांग्रेसी ट्रेड यूनियन नेताओं को छोड़कर वामपंथी नेताओं की ही भरमार थी) से उगली जा रही 'आग' से प्रभावित नहीं हो पा की बहाली का अधिकतम लक्ष्य रखते हैं, जबकि आज एक सामान्य आदमी भी यह समझने लगा है कि पब्लिक सेक्टर का दौर भी कोई समाजवाद नहीं था, वह भी पूंजीवाद ही था, वह पूंजीवादी नियोजित अर्थव्यवस्था थी, जिसकी अगली मंजिल के रूप में आज बाजार की खुली अर्थव्यवस्था का दौर आ चुका है। क्या ये संसदीय वामपंथी इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं (या सच्चाइयों से मुंह चुराना चाहते हैं) कि पब्लिक सैक्टर यानी राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद की कोख से ही वर्तमान तथाकथित मुक्त बाजारी पूंजीवाद पैदा हो रहा है। और इसके विरुद्ध संघर्ष नेहरू के 'पब्लिक सेक्टर' को बहाल करने की जमीन पर खड़ा होकर नहीं किया जा सकता। सिर्फ रस्मी कवायदें की जा सकती हैं।

अन्य क्षेत्र के मजदूरों-कर्मचारियों के साथ आज बीमा कर्मचारी भी इस बात को समझने लगे हैं कि कोई भी चुनावबाज पार्टी उनके हितों की रक्षा नहीं कर रही है। हितों की रक्षा करना तो दूर रहा, लम्बे संघर्षों से अर्जित अधिकारों पर भी डाका डाला जा रहा है। कांग्रेस, भाजपा का चरित्र तो खुल कर सामने आ ही चुका था। अब लाल पताकाधारियों की चालबाजी से भी पर्दा हटने लगा है। वामपंथियों के साथ मजबूरी यह है कि किसी के पास दलित-पिछड़ा कार्ड किसी

हालात तो यह रहे कि वित्तीय क्षेत्र पर हमला होना तय था लेकिन निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के विरुद्ध बीमा और बैंक कर्मचारियों तक का एक लम्बी लड़ाई के लिए साझा मोर्चा नहीं बन पाया। उनकी राजनीतिक चेतना उन्नत करने की स्थिति यह रही कि हर बैंक में तमाम कर्मचारी यह सोचते रहे कि उनका बैंक तो डूब ही नहीं सकता, हर प्रतिकूल परिस्थिति का मुकाबला उनकी यूनियन कर लेगी। तमाम बीमा कर्मचारी यह सोचते रहे कि वे अकेले दम पर बीमा क्षेत्र के निजीकरण को रोक लेंगे (संसद में बैठे अपने "वामपंथी" लोगों की मदद से)। उन्हें लगता था कि उनके 'जुझारू संघर्षों' से समूचा मीडिया, पूरी दुनिया उनकी 'नोटिस' लेने को बाध्य हो गई है। आम बीमा कर्मचारी को इस खुशफहमी की घुट्टी पिलाई जाती रही कि जैसे वेतन-बोनस-भत्ते की अनेक लड़ाईयों को जीता गया वैसे ही यह संघर्ष भी जीत जायेंगे। जब समूचा विश्व पूंजीवाद, तीसरी दुनिया के वित्तीय क्षेत्र पर कब्जे को जीवन-मरण का प्रश्न बना रहा था तब हमारे देश के बीमा-बैंक कर्मचारी किस भ्रम में थे और क्योंकर उन्हें भ्रमजाल में फंसाये रखा गया, यह एक बड़ा सवाल है।

बीमा क्षेत्र में विदेशी पूंजी-निवेश के महत्व को समझने के लिए तो पूर्व अमेरिकी राजदूत फ्रैंक वाइजनर का यह बयान ही काफी है "बीमा उद्योग अमेरिकी अर्थव्यवस्था का ध्वजपोत है। आप पहले इसे आने दीजिए, फिर देखिये, पूरा का पूरा बेड़ा अपनी पूरी ताकत के साथ इसके पीछे-पीछे आ जायेगा।" जाहिर है आज की दुनिया में, वित्तीय पूंजी औद्योगिक पूंजी को नियंत्रित करती है। औद्योगिक उत्पादन पर (और कृषि उत्पादन पर भी) उसका प्रभुत्व होता है। किसी देश-विशेष के वित्तीय तंत्र पर हावी होकर साम्राज्यवादी पूंजी सबसे निर्णायक ढंग से उसके अर्थतंत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेती है। ऐसा करके बिना औपनिवेशीकरण के या बिना कोई कठपुतली तानाशाह बैठाये भी, वह किसी देश के मेहनतकशों से अतिलाभ निचोड़ने का काम कर सकती है। यह है आर्थिक नवउपनिवेशवाद की कार्यप्रणाली जिसमें, सरकारी बीमा-बैंक उद्योग को बलि चढ़ना ही है।

बीमा क्षेत्र का उदारीकरण आज के विश्व पूंजीवाद की समग्र रणनीति का एक प्रमुख अंग है। इसलिए इसके विरोध की रणनीति का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य क्या हो, यह एक अहम सवाल है। बीमा क्षेत्र का उदारीकरण साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी की जितनी आवश्यकता है उतनी ही देशी पूंजी की भी। अतः आज पूंजीवाद की चौहद्दी के भीतर रहते हुए इसका विरोध किया ही नहीं जा सकता। निजी स्वामित्व की बुनियाद पर खड़े अराजक उत्पादन तंत्र का विकल्प राजकीय पूंजीवाद का ढांचा नहीं वरन उत्पादनों के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व की बुनियाद पर खड़ा समाजवादी ढांचा ही हो सकता है।

भूमण्डलीकरण की नीतियों के विरोध के लिए इसी परिप्रेक्ष्य में नये सिरे से मेहनतकश अवाम को गोलबंद और संगठित करने की एक दीर्घकालिक ठोस रणनीति बनानी होगी।

आई.आर.डी.ए. बिल पास हो जाने के बाद बीमा कर्मचारियों को अपने अन्दर की निराशा से उबरना होगा। नये सिरे से बीमा कर्मियों के बीच प्रचार और आंदोलन की कार्रवाइयों को संगठित करना होगा। अपनी सुविधाभोगी संकीर्णता और गैर-राजनीतिक निष्क्रियता छोड़नी होगी और समाज के अन्य वर्गों से जुड़कर सामाजिक मुक्ति-संघर्ष का भागीदार बनना पड़ेगा, आज के मजदूर आन्दोलन को मौजूदा पतन से बाहर निकालने के लिए यह जरूरी है कि पूरे ट्रेड यूनियन आन्दोलन में क्रान्तिकारी पुनर्जागरण की लहर पैदा की जाये और इसके लिए आगे बढ़ना ही होगा। ●

क्यों कर रहे हैं लोग आत्महत्याएं

(पेज 2 से आगे)

प्रस्तुत किये हैं। मजेदार बात यह है कि इन मौतों को यह सरकारी प्रकाशन प्राकृतिक मौतों में गिनता है! यही नहीं, पुस्तक में प्रस्तुत आंकड़े, एन.सी.आर.बी. या अन्य सर्वे रिपोर्टों से काफी कम हैं और वास्तविकता से काफी पीछे। फिर भी, ये आंकड़े भी कुछ बताते हैं। पुस्तक में 1996 तक के ही आंकड़े दर्ज किये गये हैं।

उक्त पुस्तक बताती है कि 1995 में देश में भूख व प्यास से मरने वालों की संख्या 183 थी जो 1996 में बढ़कर 442 हो गयी, यानी महज एक वर्ष में ढाई गुने की वृद्धि। तथ्य यह भी है कि इस दौर में कोई प्राकृतिक आपदा नहीं घटित हुई। पुस्तक के अनुसार देश में विभिन्न कारणों से आत्महत्या करने वालों की संख्या 1994 में, 4,446, 1995 में 6,178 और 1996 में 5,120 थी। यह संख्या भी 1997 के बाद लगातार और ज्यादा बढ़ती ही गयी है। विश्व बैंक के आंकड़े तो और भी चौंकाने वाले हैं। उसके अनुसार भारत में इस दौर में गरीबी और ज्यादा बढ़ी है, अमीरी-गरीबी के बीच की खाई बेइंतहा चौड़ी होती चली गयी है, समाज में निराशा और कुण्ठाएं बढ़ रही हैं। इसका सीधा अर्थ है कि आत्महत्याओं और अप्राकृतिक मौतों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है।

निश्चित रूप से, इन आत्महत्याओं का कारण वह जनविरोधी-मानवद्रोही पूंजीवादी व्यवस्था है जो मुनाफे की अंधी हवस में आम जनता के खून को निचोड़कर उसे टकसाल में ढालने का काम करता है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में उदारीकरण व निजीकरण की नीतियों ने जहां एकतरफ कुछ प्रतिशत धनिकों की पूंजी में बेइंतहा वृद्धि की है, उनके समृद्धि की मीनारें बढ़ती गयी हैं वहीं भारी मेहनतकश आबादी दो वक्त की रोटी तक को मोहताज होती गयी है और निराशा के महासमुद्र में गोते लगाते हुए आत्महत्या करने को मजबूर हो रही है। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार इस वक्त देश में जहां बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के 10 हजार मैनेजरों की वार्षिक आय पचास लाख रुपये से अधिक है, वहीं 60 प्रतिशत आबादी ऐसी है जिनकी वार्षिक आय पांच हजार रुपये से कम है। यानी एक अनुपाते 1000 का अन्तर है।

विगत आठ वर्षों से नयी आर्थिक नीतियों के कारण छंटनी-तालाबन्दी का जो कहर बरपा हुआ है, उसने आम मेहनतकश अवाम के जीने तक के अधिकार छीन लिये हैं। और ये हालात दिन पर दिन और भी बदतर होते जा रहे हैं। उदारीकरण की नीतियों का नंगा नाच हमारी आंखों के सामने है।

लेकिन इसका समाधान खुद अपना या अपने परिवार का जीवन खत्म कर लेना कदापि नहीं हो सकता। इसकी जिम्मेदार तो यह हत्यारी व्यवस्था है। तो क्यों न खुद को खत्म करने की जगह इस हत्यारी व्यवस्था को ही खत्म कर दिया जाए! हालात से बचने या भागने से हालात नहीं बदलते। शुतुरमुर्ग की तरह से रेत में सिर गड़ाने से रेगिस्तानी अंधड़ थमता नहीं है। वह अपना काम कर गुजरता है। जरूरत खुद को खत्म करने की नहीं आंधियों से जूझने की है। निराशा के महासमुद्र में गोते लगाने की जगह निराशा पैदा करने वाले जहरीले वटवृक्ष को खत्म करना होगा। अपनी जिन्दगी एक ऐसे मानवीय समाज के लिए कुर्बान करनी होगी जिससे आदमी द्वारा आदमी का शोषण न हो। एक ऐसा समाज जहां तारापद जैसे लोग आत्महत्या के लिए मजबूर न हों, जहां एक पिता को अपनी पुत्रियों को जहर न देना पड़े!

—विजय कुमार
रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर

कुछ जरूरी पुस्तकें

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं —10/-

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति —12/-

क्यों माओवाद —10/-

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा —लेनिन —5/-

मकड़ा और मक्खी —*विल्हेल्म लीब्कनेख्त* —2/-

ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके —*सर्जी रोस्तोवस्की* —2/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या एम.ओ. भेजें :

जनचेतना
3/274, विश्वास खण्ड,
गोमतीनगर, लखनऊ-226010
फोन (नया नंबर): 308896

बिगुल का वार्षिक चंदा : 36 रुपए

जन्मतिथि (28 नवम्बर) के अवसर पर

कम्युनिस्ट समाज के बारे में कुछ बातें

• फ्रेडरिक एंगेल्स

(8 फरवरी, 1845 को एल्बरफील्ड में दिया गया भाषण)

वैज्ञानिक समाजवाद के आविष्कारक क रूप में **कार्ल मार्क्स** के साथ **फ्रेडरिक एंगेल्स** का नाम यूं जुड़ा हुआ है कि उसे अलग किया ही नहीं जा सकता।

फ्रेडरिक एंगेल्स न सिर्फ मार्क्स के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक कार्यों के अनन्य सहयोगी थे, बल्कि वे उनके ऐसे मित्र थे, जिसके बिना मार्क्स का काम करना तो दूर, जीना तक असम्भव हो जाता। दो महान क्रान्तिकारी इतिहास-पुरुषों की ऐसी मित्रता पूरे इतिहास में दुर्लभ है।

मार्क्स और एंगेल्स, दोनों ही अलग-अलग—एक फ्रांस की क्रान्ति और दर्शनशास्त्र का अध्ययन करता हुआ, और दूसरा, इंगलैण्ड की औद्योगिक दशाओं का अध्ययन करता हुआ—पूंजीवादी समाज के चरित्र के बारे में समान नतीजों पर 1844 तक पहुंच चुके थे। इस समय तक दोनों ही इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा और द्वंद्ववादी पद्धति को अपना चुके थे। 1844 में पेरिस में दोनों की मुलाकात और **'पवित्र परिवार'** पुस्तक के संयुक्त लेखन के साथ ही उनकी निष्ठापूर्ण आजीवन अटूट मैत्री की शुरुआत हुई।

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के प्रकाशन से तीन वर्ष पूर्व, 1845 में **एल्बरफील्ड** में दिये गये अपने भाषणों में ही फ्रेडरिक एंगेल्स ने पूंजीवादी समाज के अन्तरविरोधों, उनकी विनाशकारी परिणतियों और कम्युनिस्ट समाज द्वारा प्रस्तुत समाधानों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की थी। गौरतलब है कि कम्युनिज्म के सिद्धान्त उससमय अपने विकास की प्राथमिक अवस्था में ही थे। फिर भी, अपनी गहरी ऐतिहासिक दृष्टि और सूझबूझ के सहारे एंगेल्स ने कम्युनिस्ट समाज के बारे में जो कुछ बुनियादी बातें बताई थीं, वे मजदूर कार्यकर्ता साथियों और आम पाठकों के लिए आज भी गौरतलब हैं।

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक के जन्मदिन के अवसर पर हम एल्बरफील्ड में दिये गये उनके भाषणों में से एक का अनुवाद 'बिगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। **—सम्पादक**

कम्युनिस्ट समाज में, जहां पर व्यक्तियों के हित एक दूसरे के विरोधी नहीं होंगे, बल्कि, इसके विपरीत एकीकृत हो जायेंगे, प्रतियोगिता समाप्त हो जायेगी। जैसाकि स्वत: स्पष्ट है कि तब किसी वर्ग-विशेष की बर्बादी का प्रश्न ही नहीं रह जायेगा, न ही वर्गों का अस्तित्व रहेगा जैसे कि आजकल के धनी और गरीब हैं। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण से निजी लाभ और खुद को समृद्ध बनाने का उद्देश्य जैसे ही समाप्त होगा, व्यापार संकट भी स्वत: समाप्त हो जायेंगे। कम्युनिस्ट समाज में उत्पादन और उपभोग से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त करना बहुत आसान होगा। चूंकि हम जानते हैं कि एक व्यक्ति की औसत आवश्यकताएं कितनी हैं, इसलिए एक निश्चित संख्या के व्यक्तियों के समूह की आवश्यकताओं की गणना आसानी से की जा सकती है, चूंकि उत्पादन अब निजी उत्पादकों के हाथ में नहीं रहेगा बल्कि समूह और उसकी प्रशासनिक संस्थाओं के मातहत होगा, इसलिए उत्पादन को आवश्यकताओं के अनुसार नियंत्रित करना बहुत आसान होगा।

इसतरह हम देखते हैं कि कम्युनिस्ट संगठन के अधीन वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों की प्रमुख बुराइयां कैसे गायब हो जायेंगी। यदि हम थोड़ा विस्तार में जायें तो पायेंगे कि ऐसे संगठन का लाभ यहीं तक सीमित नहीं है बल्कि अन्य कमजोरियों का आधार भी मिट जाता है। आज मैं सिर्फ कुछ आर्थिक कमजोरियों की चर्चा करूंगा। आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाये, जितना हम समझ सकते हैं, समाज की वर्तमान व्यवस्था अत्यधिक अतर्कसंगत और अव्यावहारिक है। विरोधी हितों के कारण श्रमशक्ति का बहुत बड़ा हिस्सा इस तरह से इस्तेमाल होता है कि उससे समाज को कुछ भी लाभ नहीं मिलता, और इस तरह पूंजी का बड़ा हिस्सा बिना खुद को पुनरुत्पादित किये अनावश्यक रूप से नष्ट हो जाता है। इसे हम पहले ही व्यापार संकटों में देख चुके हैं। भारी मात्रा में वस्तुएं, जिसे लोगों ने कठिन प्रयास से उत्पादित किया था, बहुत कम मूल्यों पर खपाई जाती हैं जिससे विक्रेता को नुकसान होता है, हम देखते हैं कि वस्तुओं की भारी मात्रा जो बहुत कठिन प्रयास से इकट्ठी की जाती हैं, दिवाला पिट जाने से, मालिकों की आंखों के सामने ही गायब हो जाती हैं। आइये, हम आजकल के व्यापार पर और विस्तार से बात करें। सोचिये, कोई उत्पाद उपभोक्ता तक पहुंचने के पहले कितने हाथों से गुजरता है। मित्रो देखिए, कितने तरह के सट्टेबाज, निरर्थक धोखेबाज बिचौलिये उत्पादक और उपभोक्ता के बीच जबर्दस्ती घुस आये हैं! उदाहरण के लिए, रूई की एक गांठ लें जो उत्तरी अमेरिका में पैदा की जाती है। रूई की गांठ किसान के हाथ से निकलकर एक एजेण्ट के हाथ में आती है जो मिसीसिपी या अन्य किसी जगह रहता है, फिर वहां से नदी के रास्ते न्यू आरलिएन्स पहुंचती है। यहां पर रूई की गांठ दोबारा बिकती है, पहले एजेण्ट ने इसे किसान से खरीदा फिर बेचा, इसबार इसे एक सट्टेबाज खरीदता है, सट्टेबाज इसे फिर एक निर्यातक को बेचता है। रूई की गांठ यात्रा करते हुए अब लिवरपूल पहुंचती है और एक बार फिर एक लालची सटोरिया इसकी ओर अपने हाथ बढ़ाता है और इसे झपट लेता है। यह सटोरिया फिर इसका व्यापार फिर एक कमीशन एजेण्ट से करता है, मान लें यह एक जर्मन कारखाने का खरीदार है। अब रूई की गांठ राइन से होते हुए, दर्जनों फारवर्डिंग एजेण्टों के हाथों से गुजरते, दर्जनों बार चढ़ते-उतरते रोटरडम पहुंचती है, सीधे उपभोक्ता के हाथ में नहीं बल्कि कारखानेदार के पास, जो पहले इससे उपभोक्ता वस्तु बनाता है—जो अपने धागे को बुनकर को बेचता है, बुनकर अपने बुने हुए कपड़े को छपाई करने वाले को देता है, छपाई करने वाला तब एक थोक व्यापारी से व्यापार करता है, थोक व्यापारी फिर फुटकर व्यापारी से धंधा करता है। फुटकर व्यापारी अंत में इसे उपभोक्ता को बेचता है। और यह बीच के लाखों ठग, सटोरिये, एजेण्ट, निर्यातक, कमीशनखोर, आगे बढ़ाने वाले दलाल, थोक व्यापारी और खुदरा व्यापारी जो वास्तव में उत्पादन में कोई योगदान नहीं करते, वे सभी जीना और मुनाफा कमाना चाहते हैं—और ऐसा ही करते हैं, नहीं तो वे जी नहीं सकते। मित्रो, रूई की गांठ को अमेरिका से जर्मनी लाने, उत्पाद को सीधे उपभोक्ता के हाथ में पहुंचाने के लिए, दसियों बार बेचने, सैकड़ों बार लादने-उतारने और एक गोदाम से दूसरे गोदाम तक पहुंचाने की जटिल प्रक्रिया के अतिरिक्त क्या कोई अन्य सरल और सस्ता तरीका नहीं हो सकता है? क्या यह हितों के भिन्नता से पैदा हुई कई गुनी श्रम शक्ति की बर्बादी का ज्वलन्त उदाहरण नहीं है? इस जटिल यात्रा का एक तर्कसंगत तरीके से गठित समाज में प्रश्न ही नहीं पैदा होता। हमारे उदाहरण को देखते हुए, कोई भी आसानी से हिसाब लगा सकता है कि किसी एक कालोनी को कितनी रूई या उससे उत्पादित वस्तुओं की आवश्यकता है, केन्द्रीय शासन के लिए यह तय करना कि देश के सभी गांवों, कस्बों की कुल आवश्यकता कितनी है, उतना ही आसान है। एक बार इन आंकड़ों के तैयार हो जाने पर—जो आसानी से एक या दो वर्षों में तैयार हो जायेंगे—औसत वार्षिक उपभोग में परिवर्तन सिर्फ जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में होगा; तब उपयुक्त समय पर पहले ही यह तय करना आसान होगा कि जनता को किसी खास वस्तु की कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी—सम्पूर्ण बड़ी आपूर्ति का आदेश सीधे उत्पादन केन्द्र को दिया जायेगा; तब बिना किसी बिचौलिये के, बिना अनावश्यक देरी के, अर्थात श्रमशक्ति की अत्यधिक बचत करते हुए, उत्पाद को सीधे प्राप्त करना संभव होगा। अब सटोरियों, छोटे-बड़े व्यापारियों और उस पूरे समूह को भुगतान करना जरूरी नहीं होगा। लेकिन इतना ही नहीं—इस तरह न सिर्फ इन बिचौलियों द्वारा समाज का अहित करना रोक दिया जायेगा, बल्कि, वास्तव में उन्हें उपयोगी बना दिया जायेगी। अभी तक वे एक ऐसे कार्य में संलग्न हैं जो सभी के लिए अलाभकारी है और निरर्थक है, तो भी उनके लिए आजीविका जुटाता है और अधिकांशत: उन्हें बहुत अमीर बनाता है जबकि उनका कार्य समाज के सामान्य हितों को नुकसान पहुंचाता है। अब वे उपयोगी कार्य करने के लिए स्वतंत्र होंगे और ऐसा व्यवसाय चुन सकेंगे ताकि अपने को मानव समाज का वास्तविक सदस्य और समग्र गतिविधि के एक हिस्सेदार के रूप में प्रमाणित कर सकें न कि एक आभासी और कपटी के रूप में।

आज का समाज व्यक्ति और समूह के बीच शत्रुता पैदा करता है, इस तरह एक सामाजिक युद्ध पैदा करता है जिसमें सभी सबके खिलाफ लड़ते हैं जो निरपवाद रूप से व्यक्तिगत मसलों में, विशेषतया: अशिक्षित लोगों के बीच, निर्मम और बर्बर हिंसा का रूप धारण कर लेता है—अपराध को जन्म देता है। इस तरह खुद को इस अपराध और सीधी हिंसा के खिलाफ सुरक्षित रखने के लिए, समाज को जटिल और व्यापक प्रशासनिक और न्यायिक संस्थाओं के तंत्र की जरूरत पड़ती है जिसमें अत्यधिक श्रमशक्ति की आवश्यकता पड़ती है। कम्युनिस्ट समाज में यह सब बहुत सरल हो जायेगा। ऐसा इसलिए होगा—यह आश्चर्यजनक लग सकता है—मुख्यत: इसलिए कि इस समाज की प्रशासनिक संस्थाएं लोगों के सामाजिक जीवन के व्यक्तिगत पहलुओं का ही नहीं बल्कि समग्र सामाजिक जीवन का प्रबन्धन करेंगी, उसकी समग्र गतिविधियों में, उसके समग्र पहलुओं में। हम एक व्यक्ति के अन्य सभी के साथ अन्तरविरोध को समाप्त कर देंगे, हम सामाजिक युद्ध की जगह सामाजिक शान्ति की स्थापना करेंगे, हम अपराध की जड़ पर प्रहार करेंगे—और इस तरह आज के प्रशासनिक और न्यायिक संस्थाओं की गतिविधियों का अत्यधिक हिस्सा अनुपयोगी हो जायेगा। आज भी योजनाबद्ध और स्वार्थजन्य अपराधों की तुलना में भावावेश में किये गये अपराधों की संख्या निरन्तर कम से कम होती जा रही है—व्यक्तियों के खिलाफ अपराध कम होते जा रहे हैं, सम्पत्ति के खिलाफ अपराध लगातार बढ़ रहे हैं। विकसित हो रही सभ्यता भावनाओं के हिंसक विस्फोटों को सीमित करती है, हमारे वर्तमान समाज में भी, जो युद्धरत है। एक शान्तिपूर्ण, कम्युनिस्ट समाज में कितना अधिक होगा! सम्पत्ति के खिलाफ अपराध वहां पर असंगत हो जायेगा जहां सभी को अपनी प्राकृतिक और आध्यात्मिक इच्छाओं की संतुष्टि के लिए जितना आवश्यक होगा, प्राप्त होगा, जहां पर सामाजिक श्रेणियां और भेद समाप्त हो जायेंगे। आपराधिक मामलों से सम्बन्धित कानून तंत्र खुद ही समाप्त हो जायेगा। जहां तक सामाजिक मामलों का सम्बन्ध है, अधिकांशत: जिनकी जड़ें सम्पत्ति सम्बन्धों या कम से कम ऐसे सम्बन्धों में होती हैं जो सामाजिक-युद्ध की परिस्थितियों से पैदा होती हैं, इसी तरह गायब हो जायेंगी; तब झगड़े विरल अपवादस्वरूप होंगे, जबकि आज यह सामान्य शत्रुता का प्राकृतिक परिणाम है, और आसानी से पंचों द्वारा सुलझाये जायेंगे। अभी प्रशासनिक संस्थाओं की गतिविधियों का स्रोत सामाजिक युद्ध की निरन्तरता में है—पुलिस और सम्पूर्ण प्रशासनिक मशीनरी का काम सिर्फ यह होता है कि यह युद्ध छिपा रहे, परोक्ष रूप से चले और खुली हिंसा, अपराध के रूप में न भड़के। युद्ध को निश्चित सीमाओं में रखने की तुलना में शान्ति की स्थापना अत्यन्त आसान है, अत: प्रतियोगी समाज की तुलना में कम्युनिस्ट समाज का संचालन बहुत आसान है। यदि सभ्यता ने मनुष्य को पहले ही इस तरह शिक्षित कर दिया है कि वह अपने हितों की आपूर्ति के लिए जन व्यवस्था, जन सुरक्षा और जन हित को मुकम्मल बनाये, और इसतरह पुलिस, प्रशासन और न्याय प्रणाली को अधिकतम संभव रूप से निरर्थक बना दे, यह बात उस समाज में कितनी अधिक प्रभावी होगी जिसमें हितों की एकता बुनियादी सिद्धान्त होगा, और जिसमें जनहित और व्यक्तिगत हित में कोई भेद नहीं रह जायेगा! जो पहले से मौजूद है, बिना किसी सामाजिक संगठन के, यह कितना अधिक हो जायेगा जब इसके राह में कोई बाधा नहीं होगी और इसे सामाजिक संस्थाओं का सहयोग प्राप्त होगा। हम इसतरह श्रमशक्ति की पर्याप्त वृद्धि का हिसाब भी कर सकते हैं, श्रमशक्ति के उस हिस्से से जिससे वर्तमान व्यवस्था के कारण समाज वंचित है।

स्थायी सेना, उन सबसे खर्चीली संस्थाओं में से एक है जिससे आज का समाज छुटकारा नहीं पा सकता। इससे राष्ट्र आबादी के सबसे ऊर्जावान और उपयोगी हिस्से से वंचित हो जाता है और इसे खिलाने को बाध्य होता है क्योंकि यह खुद कोई उत्पादन नहीं करता। हम अपने खुद के बजट से जानते हैं कि स्थायी सेना पर कितना खर्च आता है—240 लाख प्रतिवर्ष और एक लाख के दोगुने अत्यधिक सशक्त हाथों का उत्पादन क्षेत्र से बाहर कर दिया जाना। कम्युनिस्ट समाज में किसी के लिए स्थायी सेना रखना आवश्यक नहीं रह जायेगा। फिर भी, देश में शान्ति स्थापना के लिए क्या होगा? जैसाकि हम ऊपर देख चुके हैं, किसी के लिए भी आंतरिक शान्ति को भंग करना संभव नहीं होगा। क्रान्तियों का भय, नि:सन्देह, जो हितों के टकराव का परिणाम होता है; जहां सबके हित एकाकार हो जायेंगे, इस तरह के भय का प्रश्न ही नहीं पैदा होगा। — आक्रामक युद्धों के लिए? लेकिन कम्युनिस्ट समाज में आक्रामक युद्ध छेड़ने का विचार भी कैसे पैदा हो सकता है?—यह समाज अच्छी तरह जानता है कि युद्ध में वह मनुष्य और पूंजी गंवायेगा और बदले में सिर्फ कुछ एक दुर्दम्य विरोधी प्रान्तों को पायेगा, परिणामस्वरूप यह सामाजिक व्यवस्था के लिए विघटनकारी होगा। —सुरक्षात्मक युद्ध के लिए? इसके लिए भी स्थायी सेना की जरूरत नहीं है। हथियारों के प्रयोग का सच्चा प्रशिक्षण, न कि बैरकों वाली औपचारिक ट्रेनिंग, समाज के प्रत्येक योग्य सदस्य को देश की सुरक्षा आवश्यकता के अनुरूप देना बहुत आसान होगा। और मित्रो, युद्ध की स्थिति में, जो सिर्फ कम्युनिस्ट-विरोधी राष्ट्रों के खिलाफ होगा, ऐसे समाज के सदस्यों के पास सच्ची पितृभूमि होगी, सुरक्षा के लिए अपना सच्चा घर-परिवार होगा, इसलिए वे उत्साह, धैर्य और बहादुरी से लड़ेंगे, उनके सामने आधुनिक सेना के यंत्रवत प्रशिक्षित सैनिक भूसी की तरह बिखर जायेंगे। सोचिये कि क्रान्तिकारी सेना के उत्साह ने 1792 से 1799 के बीच कैसे अद्भुत कार्य किये थे*, जो सिर्फ एक विभ्रम के लिए लड़ा गया, पितृभूमि के प्रदर्शन के लिए। और सोचिए कि वह सेना कितनी शक्तिशाली होगी, जो एक विभ्रम के लिए नहीं बल्कि ठोस वास्तविकता के लिए लड़ती है। इस तरह सेना के कारण सभ्य राष्ट्र श्रमशक्ति की विशाल आबादी से वंचित कर दिये जाते हैं, एक कम्युनिस्ट समाज में फिर से श्रम से जुड़ जायेंगे, वे न सिर्फ अपने खाने भर को पैदा करेंगे बल्कि खुद के जीवन-यापन की आवश्यकता से बहुत अधिक उत्पाद पैदा करके जन भंडार गृहों को सौंप देंगे।

वर्तमान समाज में श्रमशक्ति की सबसे घटिया किस्म की बर्बादी अमीरों द्वारा अपनी सामाजिक हैसियत के दुरुपयोग से होती है। मैं उन सब निरर्थक और बहुत हद तक हास्यास्पद विलास के बारे में कुछ नहीं कहूंगा जो प्रदर्शन की ललक से पैदा होती है और श्रमशक्ति के एक बड़े हिस्से को खपा डालती है। लेकिन, महानुभावों, मकान के भीतर जायें, अमीर आदमी के आंतरिक अभयारण्य में, और मुझे बताएं कि क्या यह श्रमशक्ति की मूर्खतापूर्ण बर्बादी नहीं है कि ढेर सारे लोग एक व्यक्ति की सेवा-टहल के लिए अपना समय निष्क्रियता में खर्च कर रहे हैं, या और बेहतर ढंग से कहें, ऐसे कार्य में खर्च कर रहे हैं जो चारदीवारों के भीतर पड़े एक व्यक्ति के अलगाव से पैदा हुआ है? दाइयों, बावर्चियों टहलुओं, गाड़ीवानों, घरेलू नौकरों, मालियों और अन्य नामों वाले लोगों की भीड़, वास्तव में वे क्या करते हैं? पूरे दिन की व्यस्तता में कितने कम क्षण अपने मालिक के जीवन को खुशहाल बनाने और उसके मानवीय गुणों तथा जन्मजात क्षमताओं के स्वतंत्र विकास और प्रयोग को मदद देने में खर्च करते हैं—और दिन भर में कितने घंटे हमारे सामाजिक सम्बन्धों के कुप्रबन्ध से पैदा हुए कार्यों में खर्च करते हैं—गाड़ी के पीछे खड़े रहना, मालिक की प्रत्येक सनक को पूरा करना, उसके पालतू कुत्ते को ढोना और अन्य वाहियात काम। एक तर्कसंगत तरीके से संगठित समाज में, जहां प्रत्येक व्यक्ति इस स्थिति में होगा कि अमीरों की सनक की दलाली के लिए बाध्य नहीं होगा, और खुद इस सनक का शिकार नहीं होगा—इस तरह के समाज में, वह श्रमशक्ति जो विलास की व्यवस्था में बरबाद होती थी, अब खुद के और सबके हित में स्वाभाविक रूप से काम आयेगी।

श्रमशक्ति की एक और प्रकार की बर्बादी जो हमारे समाज में प्रतियोगिता के सीधे परिणाम से होती है, यह अभावग्रस्तता मजदूरों की एक बड़ी संख्या को जन्म देती है जो खुशी से काम करते, लेकिन उन्हें कोई काम नहीं मिलता। चूंकि समाज किसी भी तरह इस रूप में नहीं संगठित है कि वह श्रमशक्ति के वास्तविक उपयोग की ओर ध्यान देने में सक्षम हो, चूंकि यह अलग-अलग व्यक्तियों पर छोड़ दिया गया है कि वे लाभ के स्रोतों की तलाश करें, इसलिए यह स्वाभाविक है कि जब भी वास्तविक या उपयोगी दिखने वाले काम का बंटवारा हो, तो बहुत से मजदूर बिना किसी काम के रह जायें। प्रतियोगी संघर्ष

(पेज 5 पर जारी)

* इसका सम्बन्ध उन युद्धों से है जो क्रान्तिकारी फ्रांस ने प्रतिक्रियावादी यूरोपीय राज्यों के खिलाफ लड़े थे जो 1789-94 की फ्रांसीसी क्रान्तियों को नष्ट करना चाहते थे —सम्पादक

भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याएं : एक बहस

भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याओं पर साथी पी. आर. हरणे के पत्र से जिस बहस की शुरुआत हुई थी, उसे आगे बढ़ाते हुए 'बिगुल' के अगस्त 1999 के अंक में हमने साथी अनादि चरण के लेख की पहली किश्त छापी थी जिसका शीर्षक था, *'सवाल को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना होगा'* विभिन्न विवशताओं के कारण और फौरी प्रश्नों पर दी जाने वाली सामग्री की अधिकता के कारण लेख की दूसरी किश्त हम बाद के अंकों में नहीं छाप सके। अब इस अंक में हम दूसरी किश्त छाप रहे हैं और बहस को आगे बढ़ा रहे हैं। - सम्पादक

भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम पर नये सिरे से बहस शुरू की जानी चाहिए (दूसरी किस्त)

• अनादि चरण

भारत के क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन में भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम के सवाल पर जो दो धाराएं मौजूद हैं, उनकी चर्चा से पूर्व यह उल्लेख यहां सर्वथा प्रासंगिक होगा कि कार्यक्रम का सवाल भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की एक पुरानी गांठ है। समस्या की उसी विरासत को आज भी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन किसी न किसी रूप में ढो रहा है।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के दशकों बाद, 1951 तक इसके पास कोई कार्यक्रम मौजूद नहीं था। मोटे तौर पर यह समझ मौजूद थी कि उपनिवेश-वाद-सामन्तवाद विरोधी—राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति करनी है। इस समझ पर आधारित नीति-वक्तव्यों, प्रस्तावों, रणकौशल सम्बन्धी दस्तावेजों और पार्टी-पत्रों में छपे लेखों के आधार पर तीन दशकों तक कार्रवाइयां संचालित होती रहीं। इतने समय में चीन के कम्युनिस्टों ने पार्टी बनाने से लेकर क्रान्ति करने तक की यात्रा पूरी कर ली।

कार्यक्रम-निर्धारण : रूसी और चीनी पार्टियों के ऐतिहासिक अनुभव

रूस की कम्युनिस्ट पार्टी की पहली कांग्रेस 1898 में हुई, पर वास्तव में एक एकीकृत पार्टी का निर्माण 1903 में हुआ जब कांग्रेस में (बहुमत से) एक पार्टी-कार्यक्रम और सांगठनिक सिद्धान्त स्वीकार किये गये। पार्टी कार्यक्रम का यह मसविदा 'इस्क्रा' के सम्पादक मण्डल द्वारा तैयार किया गया था और इसके बनने की प्रक्रिया में ही जो विवाद उठ खड़ा हुआ था उसी ने किसी हद तक बोल्शेविकों-मेंशेविकों के भावी मतभेदों की रूपरेखा तय कर दी थी। तब से लेकर फरवरी, 1917 की क्रान्ति तक बोल्शेविक अपने अनुभवों के आधार पर कार्यक्रम की तफसीलों में (खासकर भूमि कार्यक्रम में) लगातार सुधार एवं परिवर्तन करते रहे। फरवरी क्रान्ति के बाद 'अप्रैल थीसिस' ने समाजवादी क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने का प्रस्ताव दिया। अक्टूबर क्रान्ति के बाद भी ठोस परिस्थितियों के मूल्यांकन के आधार पर अपने कार्यक्रम के फौरी अमल वाले पहलू में बोल्शेविक आवश्यकतानुसार संशोधन-परिवर्तन करते रहे।

1921 से लेकर 1949 तक कार्यक्रम के प्रश्न पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का रुख भी यही रहा। सैद्धान्तिक अपरिपक्वता से शुरुआत करने के बावजूद चीन के कम्युनिस्टों ने इण्टरनेशनल द्वारा प्रस्तुत सर्वहारा नेतृत्व में राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति की आम लाइन को ही पर्याप्त मानकर "कवायद" करते रहने के बजाय अपने देश की ठोस परिस्थितियों को समझकर मार्क्सवाद-लेनिनवाद को लागू किया, बहस-मुबाहसे और प्रयोगों के लम्बे सिलसिले के बाद चीनी क्रान्ति के कार्यक्रम को ठोस रूप दिया और आगे के प्रयोगों में भी उसके विभिन्न पहलुओं को लगातार विकसित करते रहे। इस प्रक्रिया में कई अहम बिन्दुओं पर उन्होंने इण्टरनेशनल के नेतृत्व से अलग पोजीशन ली और तब जाकर चीन में वे नई जनवादी क्रान्ति की थीसिस और दीर्घकालिक लोकयुद्ध की अवधारणा विकसित कर सके और उसे सफलतापूर्वक अंजाम दे सके।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के अनुभव : तीन दशकों तक बिना कार्यक्रम के क्रान्ति!!

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास इन दो महान क्रान्तियों के उदाहरणों से सर्वथा विपरीत रहा। भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन बौद्धिक पंगुता का शुरू से ही शिकार रहा, यहां तक कि इसके गठन की प्रक्रिया तक में यह दिखाई देता है। 1920 में ताशकंद में और 1925 में कानपुर सम्मेलन में दो बार इसकी स्थापना हुई, पर तीसरे इण्टरनेशनल से सम्बन्ध के बावजूद पार्टी का बोल्शेविक ढांचा काफी हद तक नदारद था। केन्द्रीय कमेटी ही पहली बार 1933 में गठित हुई।

यह इतिहास की एक बेहद कड़वी सच्चाई है कि शुरू से ही बौद्धिक रूप से कमजोर भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन का नेतृत्व मार्क्सवाद को आत्मसात करने और इसकी सार्वभौमिक सच्चाइयों को भारत की ठोस परिस्थितियों में लागू करने से कोसों दूर रहा तथा अपने सभी अहम फैसलों के लिए सोवियत संघ की पार्टी या अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व का मुंह जोहता रहा। कभी-कभी नेतृत्व के किसी हिस्से या किसी व्यक्ति ने ठोस परिस्थितियों को समझने का छोटा-मोटा प्रयास भी किया तो न तो उसे आगे बढ़ा पाया, न ही अपनी बात नेतृत्व और कतारों के समक्ष रखने का बोल्शेविक-सुलभ साहस ही जुटा पाया। इसके कारणों की चर्चा अलग से एक बड़ा मुद्दा है। हम यहां अपने को कार्यक्रम के प्रश्न तक ही सीमित रखेंगे।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व ने यदि 1953 तक पार्टी-कार्यक्रम नहीं तैयार किया और इससे उन्हें काम करने में कोई दिक्कत भी पेश नहीं आई, तो इसी से यह जाहिर था कि पार्टी कतारों की तमाम कुर्बानियों और जुझारूपन के बावजूद वर्ग-संघर्ष को रुटीनी कार्रवाई मात्र बनकर रह जाना था और अन्ततोगत्वा पार्टी को संसदीय सुअरबाड़े में ही घंस जाना था। इस पृष्ठभूमि में न तो तेलंगाना की पराजय अप्रत्याशित लगती है और न ही इस बात पर आश्चर्य होता है कि 1947 में पार्टी पहले आजादी का जश्न मनाने जा रही थी और फिर रातोंरात "यह आजादी झूठी है" का एलान हो गया। इस सबका बुनियादी कारण पार्टी की विचारधारात्मक कमजोरी और (मूलत: उसी कमजोरी के कारण) तीस वर्षों तक पार्टी के पास कार्यक्रम तक का न होना था। यह दुनिया के कम्युनिस्ट आन्दोलन की एक अजीबोगरीब मिसाल मानी जाये तो ताज्जुब की कोई बात नहीं!

कार्यक्रम के बारे में कुछ बुनियादी बातें

किसी भी देश में सर्वहारा वर्ग की पार्टी, एक सांगोपांग कार्यक्रम के अभाव में, महज क्रान्ति के लक्ष्य और मंजिल एवं स्वरूप की मोटामोटी समझ के आधार पर सर्वहारा क्रान्ति को अंजाम नहीं दे सकती। यदि वह राज्यसत्ता तक पहुंच भी जाये, तो भी वह क्रान्ति टिकाऊ व गतिमान नहीं हो सकती।

" 'इस्क्रा' ने जो एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात की वह पार्टी-कार्यक्रम का मसौदा तैयार करना था। जैसाकि हम जानते हैं, मजदूरों की पार्टी का कार्यक्रम मजदूर वर्ग के संघर्ष के ध्येय और उद्देश्यों का संक्षेप में और वैज्ञानिक ढंग से लिखा हुआ बयान होता है। कार्यक्रम सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन के अन्तिम उद्देश्य की व्याख्या भी करता है और इस अन्तिम उद्देश्य तक पहुंचने के रास्ते में जिन मांगों के लिए पार्टी लड़ती है, उनकी व्याख्या भी करता है।" (सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास, तीसरा हिन्दी संस्करण, 1955, पृ. 44-45)

किसी भी पार्टी के लिए विचारधारा कार्यक्रम में ही मूर्त रूप धारण करती है और "कर्मों का मार्गदर्शक" होने की अपनी भूमिका को मुख्यत: साकार करती है। पार्टी कार्यक्रम उत्पादन एवं विनिमय की प्रणाली, सामाजिक-आर्थिक संरचना और उसके विकास की दिशा तथा तदुपरान्त, राज्यतंत्र, संवैधानिक-वैधिक तंत्र व ऊपरी ढांचे के अन्य सभी पक्षों का मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण करता है, समाज के बुनियादी और गैर बुनियादी अन्तरविरोधों की तथा बुनियादी अन्तरविरोधों में से मुख्य अन्तरविरोध की पहचान करता है तथा क्रान्ति के दोस्त और दुश्मनों की पहचान के आधार पर संयुक्त मोर्चे का आधार प्रस्तुत करता है। थोड़े में, कार्यक्रम समाज की प्रकृति तथा क्रान्ति की मंजिल, स्वरूप और रास्ते की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। वह क्रान्ति की पूरी मंजिल के लिए रणनीति और आम रणकौशल की मजूबा प्रस्तुत करने के साथ ही नित्य परिवर्तनशील स्थितियों के अनुसार रणकौशलों में सम्भावित परिवर्तनों का आधार भी प्रस्तुत करता है।

जिन देशों में कृषि-अर्थव्यवस्था की भूमिका अहम होती है, उनमें कार्यक्रम का वह पहलू अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है, जिसमें गांवों की आर्थिक-सामाजिक संरचना और वर्ग सम्बन्धों की तथा क्रान्तिकारी वर्ग-संश्रय की चर्चा होती है। कार्यक्रम का यह पहलू आम तौर पर कम्युनिस्ट पार्टियों के भूमि कार्यक्रमों (एग्रेरियन प्रोग्राम) में विस्तार पाता है। ध्यान देने की बात यह है कि 1953 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने एक पार्टी-कार्यक्रम पारित किया, लेकिन सही अर्थों में तफसील से वह अपना भूमि-कार्यक्रम उसके बाद भी प्रस्तुत नहीं कर पाई। इस काम को भूमि क्रान्ति की लगातार रट लगाने के बावजूद 1967 के बाद कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन भी अंजाम नहीं दे पाया। एक बहुत बड़े हिस्से में तो भूमि-कार्यक्रम की आज तक कोई सुसंगत समझ नहीं मौजूद है। अस्सी के दशक में कुछ मा-ले संगठनों ने अपने अधूरे या अधकचरे भूमि-कार्यक्रम प्रस्तुत भी किये तो उन पर क्रान्किारी शिविर में कोई बहस या विचार-विमर्श नहीं हुआ और वस्तुत: वे भूमि कार्यक्रम एक अकादमिक कसरत या रस्मी दस्तावेज से अधिक कुछ नहीं बन पाये।

यहां एक बार फिर रूस और चीन के उदाहरण लें। रूस में भूमि-सम्बन्धों में प्राक्पूंजीवादी तत्वों की मौजूदगी, पूंजीवाद के प्रवेश और वर्गीय संरचना आदि प्रश्नों पर 1894-95 से लेकर 1917 की क्रान्ति तक लगातार गंभीर बहस जारी रही और भूमि कार्यक्रम में कई बार बदलाव किये गये। चीन में हुनान किसान रिपोर्ट से लेकर मुक्त क्षेत्रों में भूमि-सुधार के दौर तक गांवों में भूमि सम्बन्धों की बारीकियों और वर्ग-सम्बन्धों की तमाम तफसीलों पर पार्टी में लगातार अध्ययन-विचार चलता रहा। भारतीय ग्रामीण समाज की जटिलता-विविधता हर मायने में रूस और चीन से अधिक होने के बावजूद यहां के पार्टी साहित्य में भूमि सम्बन्धों को लेकर 'पोलेमिकल' लेखन का सर्वथा अभाव है। औपनिवेशिक काल के भूमि-सम्बन्धों पर जो गंभीर साहित्य मौजूद है, वह मुख्यत: सोवियत विद्वानों और मार्क्सवादी विश्लेषण-पद्धति का इस्तेमाल करने वाले कुछ भारतीय आर्थिक इतिहासकारों का ही है। 1947 के बाद के भारतीय समाज में उत्पादन प्रणाली (मुख्यत: कृषि उत्पादन-प्रणाली) को लेकर सोच-विचार और बहस का काम भी मुख्यत: कुछ मार्क्सवादी अकादमीशियनों-अर्थशास्त्रियों तक ही सीमित रहा। '70 के दशक में जब ऐसी ही बहस जोर पर थी तो क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन ने उसमें हस्तक्षेप तो दूर, दिलचस्पी तक लेने की जरूरत नहीं समझी।

कार्यक्रम का प्रश्न : 1967 से पहले

1947 से '51 तक भारत की अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी कार्यक्रम के प्रश्न पर लगातार दुविधा में पड़ी रही। 1947 की आजादी, भारतीय पूंजीपति वर्ग के चरित्र और यहां तक कि क्रान्ति की मंजिल तक के प्रश्न पर (रणदिवे के नेतृत्व काल में) यह अपनी समझ बदलती रही। ऐसे में कतारों को कोई स्पष्ट लाइन भला कैसे दी जा सकती थी? ऐसे में तेलंगाना किसान-संघर्ष देशव्यापी विस्तार पाने के बजाय भारतीय बुर्जुआ राज्यसत्ता के दमन और हमले के पहले ही झटके के बाद यदि फिर खड़ा न हो सका और पार्टी नेतृत्व घुटने टेककर संसदमार्गी बन गया तो भला क्या आश्चर्य?

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधिमण्डल की सोवियत पार्टी के नेतृत्व से मुलाकात के बाद पहली बार 1951 का नीति-विषयक वक्तव्य सामने आया और फिर इसी के आधार पर 1953 की तीसरी पार्टी-कांग्रेस में पहली बार कार्यक्रम का दस्तावेज स्वीकार किया गया।

लेकिन इस समय तक पार्टी क्रान्ति का मार्ग छोड़कर संसदमार्गी ढलान पर तेजी से फिसलने लगी थी। सोवियत संघ में ख्रुश्चेवी विश्वासघात और तख्तापलट के बाद भारतीय संशोधनवाद भी अन्तरराष्ट्रीय संशोधनवाद से संबल और सर्टिफिकेट पाकर फैसलाकुन तौर पर विजयी हो गया। अब जब पार्टी को क्रान्ति करनी ही नहीं थी तो लाजिमी तौर पर कार्यक्रम को कोल्ड स्टोरेज में रख दिया जाना था और महज दिखावे की वस्तु बना दिया जाना था।

इस नजरिये से देखें तो 1967 के नक्सलबाड़ी-उभार के बाद जब क्रान्तिकारी कतारें एक बार फिर एक नई क्रान्तिकारी पार्टी के उठ खड़ी होने की आशा से लबरेज होकर लामबंद हो रहीं थीं, उस समय भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम पर सोच-विचार और बहस-मुबाहसे का मुद्दा एक बार फिर एजेण्डा पर आया। पर इस बार भी इस प्रश्न को सही ढंग से हल करने के बजाय 'शॉर्टकट' अपनाया गया और चीनी क्रान्ति के कार्यक्रम की कार्बन कापी को हूबहू लागू करते हुए निहायत नौकरशाहाना और फरमानाशाहाना अंदाज में हर तरह के बहस-मुबाहसे का गला घोंट दिया गया।

इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। पर इसके पूर्व हम भाकपा, माकपा और कुछ अन्य कथित मार्क्सवादी संगठनों के कार्यक्रमों पर भी अत्यन्त संक्षेप में अपने विचार रखेंगे।

(अगले अंक में जारी)

कम्युनिस्ट समाज के बारे में कुछ बातें

(पेज 4 से आगे)

अनिवार्यत: प्रत्येक को बाध्य करता है कि अपनी शक्ति को अधिकतम सीमा तक तनाव दे, ताकि उपलब्ध सुविधाओं का इस्तेमाल कर सके, मंहगे श्रम को सस्ते श्रम से प्रतिस्थापित करे। विकसित होती सभ्यता इसके नये-नये तरीके ईजाद कर रही है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे को बेकार करके, दूसरे लोगों के श्रम को एक या दूसरे तरीके से हटाकर काम करना पड़ता है। इस तरह सभ्य समाज में बेरोजगार लोगों की एक बड़ी आबादी होती है जो प्रसन्नतापूर्वक काम करेंगे लेकिन कोई काम नहीं पाते, इनकी संख्या आम अनुमान से कहीं अधिक होती है। और हम ऐसे लोगों को एक या दूसरे प्रकार के नीच कर्म में खुद को ले जाते हुए पाते हैं, भीख मांगना, गलियों में झाड़ू लगाना, नुक्कड़ों पर खड़े रहना, यदा कदा मिलने वाले छोटे-मोटे कामों से अपनी आत्मा और शरीर को किसी तरह एक रखना, सभी तरह की छोटी और तुच्छ वस्तुओं की फेरी लगाना, जैसे कि हमने उन गरीब लड़कियों के जोड़े को इस शाम देखा, वे एक गिटार के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहीं थीं, पैसे के लिए गा और बजा रहीं थीं, हर प्रकार की शर्मनाक बातचीत के लिए विवश की जा रहीं थीं, चंद सिक्कों के लिए अपमानजनक ताने सुन रही थीं। इनमें से कितनी वास्तविक वेश्यावृत्ति का शिकार बन जाती है। सज्जनो, ये अभागे लोग, जिनके लिए अन्य कोई रास्ता नहीं खुला है सिवाय खुद को किसी नीच कर्म में ढकेल देने के, उनकी संख्या बहुत बड़ी है—हमारे बेचारे राहत कर्मचारी आपको इनके बारे में सबकुछ बता सकते हैं। और यह मत भूलें कि उनकी अनुपयोगिता के बावजूद समाज किसी तरह उनका भी भरण-पोषण करता है। यदि, समाज को उनके भरण-पोषण का खर्च उठाना ही है, तो ऐसा भी किया जा सकता है कि ये बेरोजगार लोग अपना गुजारा सम्मान के साथ कमा सकें। लेकिन वर्तमान प्रतियोगितापूर्ण समाज ऐसा नहीं कर सकता।

सज्जनो, यदि आप इन सबके बारे में सोचें—मैं आपको दूसरे बहुत से उदाहरण दे सकता था कि हमारी वर्तमान व्यवस्था किस तरह अपनी श्रमशक्ति को बर्बाद करती है—यदि आप इसके बारे में सोचें तो आप पायेंगे कि मानव समाज के पास इस्तेमाल के लिए उत्पादक शक्तियों की प्रचुरता है जो सबके लिए अत्यधिक लाभकारी ढंग से काम में आने के लिए एक तर्कसंगत संगठन और नियन्त्रित वितरण का इंतजार कर रही हैं। इसके बाद आपके लिए यह निर्णय करना संभव होगा कि यह डर कितना निराधार है कि सामाजिक कार्यों के न्यायसंगत बंटवारे से प्रत्येक व्यक्ति पर श्रम का इतना बोझ आ जायेगा कि उनके लिए अन्य किसी काम में लगना असंभव हो जायेगा। इसके विपरीत हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार के संगठन में, प्रत्येक व्यक्ति का परम्परागत श्रम काल घटकर आधा हो जायेगा—उस श्रम के उपयोग से जो या तो इस्तेमाल नहीं होता या अनुपयोगी ढंग से इस्तेमाल होता है।

पर, कम्युनिस्ट संगठन द्वारा प्रस्तावित लाभों में बर्बाद हो रही श्रम शक्ति का इस्तेमाल ही सबसे महत्वपूर्ण नहीं है। श्रम शक्ति की अत्यधिक बचत इस तथ्य में निहित है कि इसमें व्यक्तिगत सामर्थ्य को सामाजिक और सामूहिक सामर्थ्य से मिला दिया जाता है और इस बात पर निर्भर है कि यह उन शक्तियों का संकेन्द्रण करती है जो पहले एक दूसरे की विरोधी थीं।

(मार्क्स-एंगेल्स : कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड-4, पृ. 246-252)

अनुवाद : ओ.पी. सिन्हा

चीन की नवजनवादी क्रान्ति के अर्द्धशतीवर्ष के अवसर पर

जनमुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-एक)

पूर्वकथा : सामन्ती-औपनिवेशिक उत्पीड़न और जन-प्रतिरोध का सदियों लम्बा सिलसिला तथा नये चीन का नया जागरण

1917 की सोवियत समाजवादी क्रान्ति के बाद 1949 की चीनी नवजनवादी क्रान्ति बीसवीं सदी की दूसरी महानतम क्रान्ति थी जिसने न सिर्फ चीन बल्कि पूरी दुनिया के इतिहास-विकास की दिशा पर अमिट प्रभाव छोड़ा। चीनी क्रान्ति के नेता माओ त्से-तुङ लेनिन के बाद हमारे समय के महानतम क्रान्तिकारी थे।

समाजवादी सोवियत संघ आज बिखर चुका है और चीन में भी समाजवाद का मुखौटा लगाकर पूंजीवादी पथगामी शासन कर रहे हैं लेकिन इन दोनों महान क्रान्तियों ने विश्व इतिहास पर जो छाप छोड़ी है, वह अमिट है। इन क्रान्तियों ने दुनिया भर के मेहनतकशों को जो राह दिखाई, उसपर वे निश्चय ही फिर आगे बढ़ेंगे और साम्राज्यवाद के ताबूत में आखिरी कील ठोंकने का काम करेंगे। इक्कीसवीं सदी नई सर्वहारा क्रान्तियों की सदी होगी जिनकी राह बीसवीं सदी की प्रारम्भिक सर्वहारा क्रान्तियां रौशन करती रहेंगी।

बीसवीं सदी के अन्तिम वर्ष से चीन की नवजनवादी क्रान्ति का अर्द्धशतीवर्ष शुरू हो रहा है जो नई सदी के पहले वर्ष के अक्टूबर माह तक चलेगा। इस अवसर पर हम चीनी क्रान्ति की संक्षिप्त सचित्र कथा 'बिगुल' के पाठकों के लिए, इस अंक से शुरू कर रहे हैं।

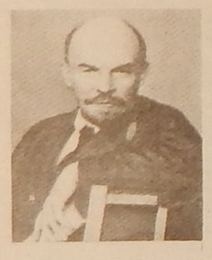

1. अक्टूबर क्रान्ति के दौरान शीत प्रासाद पर धावा बोलते मजदूर

2. रूसी समाजवादी क्रान्ति के नेता लेनिन

3. चीनी क्रान्ति के नेता माओ त्से-तुङ

1 1949 के पहले चीनी समाज एक अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक समाज था। पूरा देश विदेशी प्रभुत्व और लूट का शिकार था तथा क्रूर सामन्तों के मातहत किसान भूखों मर रहे थे।

19वीं सदी के मध्य तक ब्रिटेन ने चीन में अफीम की बाढ़ ला दी। 1840-42 और 1856-60 के दो अफीम युद्धों में उसने चीनियों को परास्त कर दिया। अफीम व्यापार से अंग्रेज और अमरिकी पूंजीपतियों की थैलियां फूलती रहीं और दूसरी ओर अफीम के लती होकर दसियों लाख चीनी मौत से भी बदतर जिन्दगी जीते रहे। 1838 तक चीन प्रतिवर्ष पचास लाख पौण्ड अफीम का आयात करने लगा था जो चीन के कुल आयात का 57 प्रतिशत था।

ब्रिटेन, फ्रांस, अमरिका, जारकालीन रूस, जर्मनी और जापान—एक के बाद एक ये सभी साम्राज्यवादी ताकतें चीन में घुस आईं और चीनी जनता को निचोड़ने में लग गईं। चीन के अर्थतंत्र और राजनीति पर उनका नियंत्रण हो गया। वहां की संस्कृति को उन्होंने तबाह कर डाला। साम्राज्यवादी पूरी दुनिया के बागानों-खदानों में चीनी "कुली मजदूरों" का इस्तेमाल करते थे। चीन के प्रतिक्रियावादी शासक साम्राज्यवादियों के टट्टू हो गये। चीनी सरकार के ऊपर तमाम असमान सन्धियां थोप दी गईं। जिस चीज को भी साम्राज्यवादी "गैरकानूनी" समझते थे, उसकी "सजा" के तौर पर वे सरकार से कुछ और क्षेत्र हथिया लेते थे तथा भारी रकम भी वसूलते थे। उन्नीसवीं सदी के अंत तक विभिन्न विदेशी ताकतों के बीच चीन के बंदरबांट का काम पूरा हो चुका था। 1899 में अमरिका ने "खुले दरवाजे" की नीति की घोषणा की जो चीन में विभिन्न "प्रभावक्षेत्रों" को मान्यता देती थी और सभी साम्राज्यवादियों को, चीन को लूटने का "बराबर मौका" देती थी। चीन के बंदरगाह, डाक-व्यवस्था, जहाजरानी, रेलवे और टेलीग्राफ व्यवस्था विदेशियों के हाथ में थे। जलमार्गों पर और झीलों में ब्रिटिश और अमरिकी 'गनबोटें' गश्त लगाती रहती थीं।

2 1900 तक चीन पूरी तरह गरीबी, भुखमरी और बीमारियों का देश बन चुका था। शहरों में लोग अफीम, हैजा, पेचिश, मलेरिया और सिफलिस आदि के शिकार हो रहे थे। बेघर लोग सड़कों पर रह और मर रहे थे। पीने का साफ पानी तक नहीं मिल रहा था। गांवों में मुख्य आबादी गरीब किसानों और खेत मजदूरों की थी। वे सामन्ती भूस्वामियों और धनी किसानों की लूट के चलते भीषण गरीबी और कर्ज में डूबे हुए थे। बहुतेरे परिवार अपने बच्चों को इसलिए बेच देते थे कि वे उनका पेट नहीं भर सकते थे। आर्थिक-सामाजिक उत्पीड़न की इस व्यवस्था को मजबूत बनाने में कन्फ्यूशियस के विचारों सहित तमाम पुरातनपंथी प्रतिक्रियावादी विचारों का, अंधविश्वास और भाग्यवाद का, धार्मिक कर्मकाण्डों का और अशिक्षा का भी भारी योगदान था।

6. गरीबी, भुखमरी और अकाल से किसान मर रहे थे—सड़कों पर, खेतों में, अपनी झोपड़ियों में, रेलवे स्टेशनों के बाहर—हर जगह मरते बच्चे, बूढ़े और स्त्रियां दिखाई दे जाते थे। लेकिन सरकार मरते-मरते भी उनसे टैक्स के तौर पर आखिरी कौड़ी, अनाज की आखिरी मुट्ठी भी वसूल लेना चाहती थी।

7. एक ग्रामीण औरत अपने बच्चे को बेचने के लिए बाजार में लेकर बैठी हुई।

5. शंघाई के बंदरगाह में खड़े विदेशी जहाज

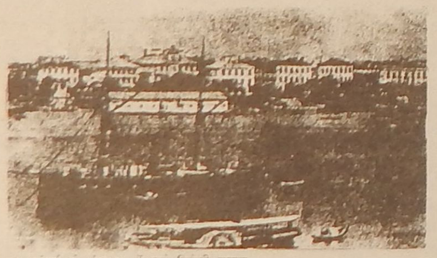

4. पेईचिङ की सड़कों पर ओवरसीयर के डण्डे के मातहत काम कर रहे "कुली-मजदूर"

8. पुराने चीन की सबसे घिनौनी प्रथाओं में से एक थी स्त्रियों के पैर के पंजों को बांधने की प्रथा। तीन-चार वर्ष की उम्र से ही लड़कियों के पंजे की चारों उंगलियों को पीछे की ओर मोड़ कर कपड़े की पट्टियों से कस कर बांध दिया जाता था। 2-3 वर्ष बाद अंगूठे को मोड़कर एड़ी के साथ बांध दिया जाता था। छोटे-छोटे पैर सुकुमारता का प्रतीक माने जाते थे और भयानक कष्ट के साथ स्त्रियों की धीमी व डगमगाती हुई चाल बड़ी आकर्षक समझी जाती थी।

3 फिर भी यह इतिहास का अकाट्य नियम है कि जहां दमन होगा वहां प्रतिरोध भी होगा ही। 1850 से 1864 तक चीन में प्रसिद्ध ताइपिङ किसान विद्रोह चलता रहा। किसानों ने हथियार उठा लिये और नानकिङ में एक क्रान्तिकारी सरकार की स्थापना की। ताइपिङ विद्रोहियों ने सामन्ती भूमि-व्यवस्था को समाप्त कर दिया और सामन्ती संस्कृति के बुनियादी विचारों को चुनौती दी। लेकिन मांचू सरकार (सम्राट द्वारा संचालित चिङ वंश की सरकार) और अमरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस की सेनाओं ने मिलकर ताइपिङ विद्रोह को बर्बरतापूर्वक कुचल डाला। ताइपिङ-विद्रोहियों की अंतिम पराजय तक दो करोड़ लोग मारे जा चुके थे।

1900 में प्रसिद्ध यी हो तुआन आन्दोलन (बॉक्सर विद्रोह) हुआ। यह विद्रोह किसानों के एक गुप्त क्रान्तिकारी संगठन के नेतृत्व में हुआ जो विदेशी प्रभुत्व के विरोधी थे। इस आन्दोलन को कुचलने में ब्रिटिश, फ्रांसीसी, अमरिकी, आस्ट्रो-हंगरियन, अमरिकी, रूसी, जापानी, इतालवी और जर्मन—कुल आठ देशों की सेनाओं ने चीनी सरकार की मदद की।

19वीं सदी के अंत में विश्व पूंजीवाद, साम्राज्यवाद की मंजिल में पहुंचा और एकाधिकार ने मुक्त प्रतिस्पर्द्धा का स्थान ले लिया। तब साम्राज्यवादी आक्रमण के नये लक्षण प्रकट हुए, जैसे कि पूंजी के निर्यात में लगातार वृद्धि तथा हमले का वृहत्तर एकाधिकारवादी स्वरूप। इससे साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा चीन को बांटने की लड़ाई और अधिक तेज हो गई। 1894 का चीन-जापान युद्ध और 1900 में हुआ आठ शक्तियों की संयुक्त सेना का आक्रमणकारी युद्ध इसी का प्रमाण था। चीन-जापान युद्ध के बाद चीन को शिमोनोस्की की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसके अंतर्गत जापान को चीन में फैक्ट्रियां लगाने का अधिकार मिल गया। इसके बाद चीन में कारखाने लगाने, रेल-निर्माण, उत्खनन, बैंक स्थापित करने के लिए साम्राज्यवादी टूट पड़े। जल्दी ही चीनी उद्योगों और बैंकों पर उनका कब्जा हो गया। सामंती भूस्वामियों के अतिरिक्त कमीशनखोर दलाल, नौकरशाह पूंजीपति साम्राज्यवादियों के दूसरे प्रमुख सहयोगी के रूप में सामने आये।

9. साम्राज्यवादियों ने चीन को अपने-अपने प्रभावक्षेत्रों में बंटवारा कर लिया।

4 1901 से 1910 के बीच चीन में लगभग 1000 स्वतःस्फूर्त संघर्ष हुए जिनमें करोड़ों लोगों ने हिस्सा लिया।

चीन में क्रान्तिकारी पूंजीवादी जनवादियों के नेता डा. सुन यात-सेन ने 1905 में तुङ-मङ-हुवेई (क्रान्तिकारी लीग) की स्थापना की। लीग ने विदेशी प्रभुत्व तथा चिङ राजशाही (मांचू राजवंश) के अंत का आह्वान किया और फ्रांसीसी क्रान्ति के नारे 'स्वतंत्रता-समानता-भ्रातृत्व' के आधार पर एक बुर्जुआ जनवादी गणराज्य स्थापित करने का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। चिङ वंश का तख्ता पलटकर 1911 में हुई जनवादी क्रान्ति ने चीन में 2,000 वर्षों से भी अधिक समय से चली आ रही सामंती राजशाही का अंत कर दिया। चीनी गणराज्य की अन्तरिम सरकार की नानकिङ में स्थापना हुई। सुनयात-सेन इस सरकार के अस्थायी अध्यक्ष बने। लेकिन राज्यसत्ता जल्दी ही प्रतिक्रान्तिकारी युआन शिह-काइ के हाथों में चली गई। युआन शिह-काइ एक युद्ध सरदार था जिसने राजशाही को परास्त करने में मदद की थी। सुन यात-सेन ने युआन शिह-काइ का विरोध करने के लिए कैण्टन में अपनी सत्ता स्थापित की। लेकिन साम्राज्यवादियों ने धन और हथियारों से युआन की भरपूर मदद की। फलतः उसने अपने विरुद्ध विद्रोह को कुचल दिया। इसके बाद चीन लगभग एक दशक तक कई "रियासतों" में विभाजित बना रहा जिन पर विभिन्न क्षेत्रीय सेनाएं और सामन्ती युद्ध-सरदार काबिज थे। ये सामन्ती युद्ध सरदार अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने के लिए साम्राज्यवादी ताकतों का सहारा लेते थे और बदले में साम्राज्यवादी ताकतें इन्हें मोहरा बनाकर अपना उल्लू सीधा करती थीं।

10. ताइपिङ विद्रोह, 1850-1864

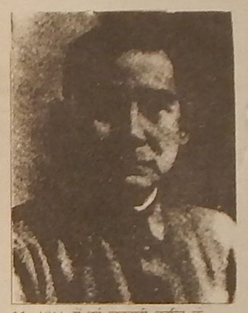

11. 1911 में हुई जनवादी क्रान्ति के नेता डा. सुन यात-सेन

12. मई 1919 के छात्र आन्दोलन के दौरान पीकिङ में छात्रों का प्रदर्शन

13. 4 मई 1919 के आन्दोलन के दौरान पीकिङ में छात्रों की सभा को तितर-बितर करती पुलिस

5 प्रथम विश्वयुद्ध (1914-19) जब समाप्ति की ओर बढ़ रहा था, उससमय चीन के बहुतेरे प्रबुद्ध लोग सोचते थे कि "पश्चिमी जनतंत्र" की विजय के बाद चीन के साथ इंसाफ होगा और उसकी हड़पी गई भूमि लौटा दी जायेगी। लेकिन वर्साय सम्मेलन ने उनकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। साम्राज्यवादियों ने पूरी दुनिया की फिर से बंदरबांट करते हुए सिर्फ इतना किया कि चीन में जर्मनी के "अधिकारों-विशेषाधिकारों" को उससे छीनकर जापान को सौंप दिया।

4 मई, 1919 को पीकिङ के 3000 छात्रों ने इस निर्णय का विरोध करते हुए एक जुलूस निकाला। इसके बाद मार्शल लॉ घोषित कर दिया गया और गिरफ्तारियां शुरू हो गईं। लेकिन विरोध और व्यापक शक्ल अख्तियार करता चला गया। साम्राज्यवादियों और देश का सौदा करने वाले युद्ध-सरदारों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चे का गठन किया गया। 10 मई को स्कूलों-कालेजों में आम हड़ताल रही। 2-4 जून के बीच शिक्षकों-छात्रों की व्यापक गिरफ्तारी के बाद आन्दोलन की ज्वाला और उग्र हो गई। 6 जून को शंघाई में हुई आम हड़ताल आसपास के इलाकों में भी फैल गई। 100 से अधिक कम्पनियों-कारखानों में तालाबंदी हो गई। हड़ताल में करीब 90,000 मजदूरों ने हिस्सा लिया जिनमें स्त्रियां भी शामिल थीं। 4 मई 1919 के छात्र आन्दोलन से शुरू हुए देशव्यापी उभार को फौरी तौर पर दबा दिया गया, लेकिन इस विस्फोट के बाद चीनी क्रान्ति एक नये दौर में प्रविष्ट हो गई।

मई, 1919 के पहले चीन की पूंजीवादी जनवादी क्रान्ति में नेतृत्व और पहल मुख्यतः (राष्ट्रीय) पूंजीपति वर्ग के हाथों में थी। मई, आन्दोलन के बाद श्रमिक वर्ग ने तेजी से आगे बढ़कर साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी क्रान्ति के नेतृत्व को अपने हाथों में लेना शुरू कर दिया। मई, 1919 के पहले भी चीनी मजदूर वर्ग न सिर्फ मांगों को लेकर लड़ा था, बल्कि उसने क्रान्तिकारी संघर्षों में भी हिस्सा लिया था। पर उसकी भूमिका पूंजीपति वर्ग के अनुयायी की थी। वह अपनी खुद की राजनीतिक मांगों से और संघर्ष के कार्यक्रम से अनभिज्ञ था। मई, 1919 के उभार से उसने अपनी नई यात्रा की शुरुआत की।

4 मई आन्दोलन के गर्भ से प्रबुद्ध युवा विद्यार्थियों-बुद्धिजीवियों की एक ऐसी क्रान्तिकारी पीढ़ी उभरकर सामने आई, जो पूंजीवादी जनवाद की सीमाओं को देखने-पहचानने के बाद वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों की तरफ तेजी से उन्मुख हुई। 1917 की महान अक्टूबर क्रान्ति के तोपों के धमाकों ने मार्क्सवाद के आलोक को चीन तक पहुंचा दिया था और युवा विद्यार्थी मार्क्सवाद का अध्ययन कर रहे थे। मई आन्दोलन ने उन्हें मजदूर वर्ग की विशाल संगठित शक्ति और भूमिका का अहसास कराया। इन हालात में चीन में मजदूर वर्ग के आन्दोलन के साथ मार्क्सवादी सिद्धान्त के एकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के लिए तेजी से जमीन तैयार होने लगी।

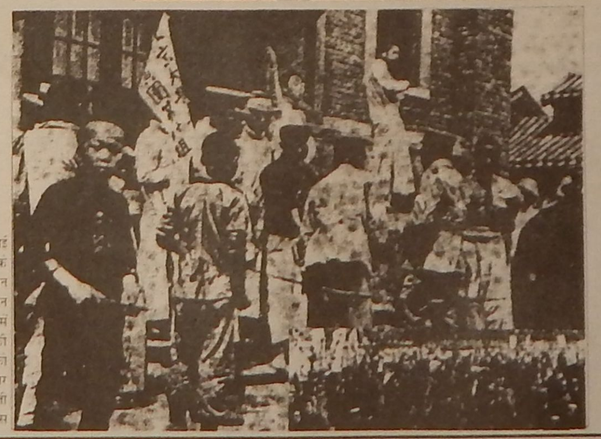

चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के बारे में, चीनी क्रान्ति के नेता माओ त्से-तुङ के प्रारम्भिक जीवन और शुरुआती क्रान्तिकारी गतिविधियों के बारे में तथा चीनी क्रान्ति की आगे की विकास-यात्रा के बारे में पढ़िए
अगले अंक में

अक्टूबर क्रान्ति की 82वीं वर्षगांठ (7 नवम्बर) के अवसर पर

अक्टूबर की हवाएं मरी नहीं हैं! वे फिर उठेंगी भयंकर तूफान बनकर!

• आलोक रंजन

आज से 82 वर्षों पहले, लेनिन और बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में रूस में पेत्रोग्राद के मजदूरों ने शीत प्रासाद पर धावा बोलकर अस्थायी सरकार की सत्ता को धूल में मिला दिया था और पहली सफल सर्वहारा क्रान्ति को अंजाम दिया था। अक्टूबर क्रान्ति पहले विश्वयुद्ध के बीच सम्पन्न हुई थी जब प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादी डकैत गिरोहों के आपसी युद्ध में लाखों लोग अपने प्राण गंवा रहे थे।

यूरोप के अधिकांश देशों के मजदूरों के तथाकथित समाजवादी नेता अंधराष्ट्रवादी बयार में बहकर इस जघन्यतम अपराध के साझीदार बन चुके थे और यूरोपीय मजदूर वर्ग का आह्वान कर रहे थे कि वे "मातृभूमि की रक्षा" के नाम पर अपने ही शोषकों के हितों के लिए अपनी बलि दें। बोल्शेविक दूसरे इण्टरनेशनल के इन गद्दारों के विरुद्ध, एकदम अलग-थलग पड़ जाने का खतरा मोल लेकर भी, डटकर खड़े हुए। अपने देश में भी भांति-भांति की सुधारवादी, अर्थवादी धाराओं से समझौताहीन संघर्ष करके उन्होंने मजबूत विचारधारात्मक आधार पर सुसंगठित क्रान्तिकारी ढांचे वाली पार्टी खड़ी की और सर्वहारा वर्ग तथा व्यापक मेहनतकश जन समुदाय को नेतृत्व देते हुए तत्कालीन रूस की विशिष्ट क्रान्तिकारी परिस्थितियों से गुजरते हुए पुरानी व्यवस्था को चकनाचूर कर देने के लिए तैयार किया।

यूं कहने के लिए 1917 की सोवियत समाजवादी क्रान्ति को अक्टूबर क्रान्ति कहा जाता है, लेकिन सच यह है कि शीतप्रासाद पर धावा और अस्थायी सरकार को सत्ताच्युत करने की ऐतिहासिक शौर्यपूर्ण कार्रवाई का दिन (पुराने कैलेण्डर से 25 अक्टूबर, नये कैलेण्डर से 7 नवम्बर) क्रान्ति के सर्वोपरि राजनीतिक कार्यभार—राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने के कार्यभार के समापन का नहीं बल्कि समारम्भ का दिन था। सभी प्रतिक्रियावादी ताकतों ने एकजुट होकर नवजात क्रान्तिकारी सर्वहारा सत्ता पर हमला बोल दिया। दुनिया भर के सभी साम्राज्यवादी न सिर्फ उनकी पीठ पर खड़े रहे, बल्कि सीधे हमले की कार्रवाई से भी बाज नहीं। गृहयुद्ध के कठिन वर्षों से गुजरने के बाद ही सर्वहारा वर्ग राजनीतिक सत्ता देशव्यापी स्तर पर, प्रभावी ढंग से हासिल कर सका। कहा जा सकता है कि अक्टूबर क्रान्ति पूरे विश्व पूंजीवादी तंत्र के खिलाफ अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग द्वारा युद्ध की घोषणा थी। इसलिए लाजिमी तौर पर इसे न सिर्फ रूस बल्कि पूरी दुनिया के साम्राज्यवादियों के प्रचण्डतम क्रोध का शिकार होना ही था।

बोल्शेविकों को यह पूरी उम्मीद थी कि यूरोप के मजदूर रूसी सर्वहारा के रास्ते पर चल पड़ेंगे क्योंकि महायुद्ध के विनाशकारी नतीजों को वे भी भीषण रूप से भुगत रहे थे। बेशक, अक्टूबर क्रान्ति के बाद पूरे यूरोप में क्रान्तिकारी संघर्षों की एक बड़ी लहर आई, जिसका शिखर-बिन्दु विफल जर्मन क्रान्ति थी, लेकिन मुख्यत: अवसरवादी-संशोधनवादी जकड़बन्दी के चलते और दूसरे, चेत चुके साम्राज्यवादियों की एकजुट कोशिशों के चलते यूरोपीय क्रान्तियों की कोशिशें पीछे धकेल दी गईं। यह यूरोप में क्रान्तिकारी सम्भावनाओं का अंतिम विस्फोट था जो दरअसल पिछली सदी की मुख्य प्रवृत्ति की यात्रा का ही आखिरी सिरा था। उन्नीसवीं सदी का यूरोप स्वतंत्र प्रतियोगिता वाले पूंजीवाद का रंगमंच था और सर्वहारा क्रान्तियों के तूफान का केन्द्र था। सदी के अंत में जब इजारेदारियों और विश्वबाजार का विकास हुआ और पूंजीवाद ने साम्राज्यवाद के युग में प्रवेश किया तो उपनिवेशों-अर्द्धउपनिवेशों की भारी लूट से यूरोपीय लुटेरों ने अपने देशों के संगठित सर्वहाराओं के एक बड़े हिस्से को रियायतों और सुविधाओं की घूस दी और इन सुविधाप्राप्त सफेदपोश मजदूरों में अवसरवाद-अर्थवाद की राजनीति का आधार विस्तारित हुआ। क्रान्तियों के तूफानों का केन्द्र पश्चिम से खिसककर पूरब में आने लगा और उपनिवेशों की साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्तियां विश्व सर्वहारा क्रान्ति का अंग बन गईं।

1917 का रूस न विकसित पश्चिम का अंग था, न ही पिछड़े पूरब का। वह पूरब-पश्चिम के बीच का सेतु था और क्रान्तियों के तूफानों का केन्द्र जब पश्चिम से पूरब की ओर आ रहा था तो रूसी सर्वहारा वर्ग ने ऐतिहासिक भूमिका निभाते हुए पहली महान, सफल सर्वहारा क्रान्ति को "पूरब-पश्चिम सेतु" पर ही अंजाम दे दिया। पर यूरोप की आग भी संशोधनवादी शीतलहरी के बावजूद अभी पूरी तरह बुझी नहीं थी। अक्टूबर क्रान्ति के बाद वह आखिरी बार अपनी पूरी ताकत लगाकर भड़क उठी थी और फिर कुचल दी गई थी।

•

सोवियत समाजवादी क्रान्ति सर्वहारा क्रान्तियों के युग के पदार्पण की घोषणा थी। यह सभी देशों के मजदूरों के लिए और मुट्ठी भर साम्राज्यवादियों की लूट और दमन की शिकार एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका की उत्पीड़ित जनता के लिए युद्धनाद था। युवा समाजवादी राज्य के समर्थन में पूरी दुनिया के मजदूर आगे आये। अक्टूबर क्रान्ति के तोपों के धमाकों ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद को धरती के कोने-कोने तक पहुंचा दिया। दर्जनों देशों में सर्वहारा क्रान्तिकारी पार्टियां संगठित हो गईं। अक्टूबर क्रान्ति के बाद गठित कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल ने नई पार्टियों का मार्ग-दर्शन करने और सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद का झण्डा ऊंचा उठाने में अहम भूमिका निभाई।

अक्टूबर क्रान्ति ने डंके की चोट पर घोषणा करके सर्वहारा अधिनायकत्व की घोषणा की। अबतक की सभी राज्यसत्ताएं किसी न किसी शोषक-शासक वर्ग का अधिनायकत्व ही थीं, पर वे अपने वर्ग-चरित्र पर तरह-तरह के पर्दे डाले रहतीं थीं। सर्वहारा समाजवादी सत्ता ने यह स्वीकार किया कि वह पूंजीपतियों-भूस्वामियों पर सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में बहुसंख्यक मेहनतकश अवाम का अधिनायकत्व स्थापित करेगी। जो राज्यसत्ता जनता की बहुसंख्यक हिस्से के हितों का वास्तव में प्रतिनिधित्व करती है, उसे अपनी मंशा और अपना रंग छुपाने की कोई जरूरत नहीं होती।

प्रारम्भ से ही साम्राज्यवादियों ने और सभी प्रतिक्रियावादियों ने समाजवादी राज्य के प्रति अपनी चरम घृणा और अदम्य भय का लगातार प्रदर्शन किया। बल्कि वे उसे छुपाने में असफल रहे। लेनिन और स्तालिन के नेतृत्व वाले सोवियत संघ को अलग-थलग कर देने, उसका गला घोंट देने, साजिशें करने, तोड़फोड़ करने तथा विभीषणों और शिखण्डियों की मदद से वार करने का कोई भी मौका साम्राज्यवादी कभी नहीं

(पेज 9 पर जारी)

अक्टूबर क्रान्ति का अन्तरराष्ट्रीय चरित्र

• जोसेफ स्तालिन

अक्टूबर क्रान्ति को महज "राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर" की क्रान्ति के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह, बुनियादी तौर पर, एक अन्तरराष्ट्रीय, विश्व व्यवस्था की क्रान्ति है, क्योंकि यह मानव जाति के विश्व-इतिहास में एक आमूलगामी बदलाव का, पुरानी पूंजीवादी दुनिया के एक नई समाजवादी दुनिया में रूपान्तरण का सूचक है।

अतीत की क्रान्तियों का आम तौर पर अन्त इस रूप में हुआ कि सरकार चलाने वाले शोषकों के किसी एक समूह का स्थान शोषकों के किसी दूसरे समूह ने ले लिया। शोषक बदल गये, शोषण बना रहा। गुलामों के मुक्ति आन्दोलन के साथ यही हुआ। भूदासों के विद्रोह के काल में भी यही हुआ। इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी की प्रसिद्ध "महान" क्रान्तियों के काल के दौरान भी ऐसा ही हुआ। मैं पेरिस कम्यून की बात नहीं कर रहा हूं जो इतिहास को पूंजीवाद के विरुद्ध मोड़ देने की सर्वहारा वर्ग की पहली महान, शौर्यपूर्ण, लेकिन असफल कोशिश थी।

अक्टूबर क्रान्ति इन क्रान्तियों से *सार रूप में* अलग है। इसका लक्ष्य शोषण के एक रूप की जगह शोषण के दूसरे रूप को, शोषकों के एक समूह की जगह शोषकों के दूसरे समूह को स्थापित करना नहीं है, बल्कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का उन्मूलन करना है, शोषकों के सभी समूहों का उन्मूलन करना है, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को स्थापित करना है, अबतक के सभी उत्पीड़ित वर्गों में से सर्वाधिक क्रान्तिकारी वर्ग की सत्ता को स्थापित करना है, एक नये, वर्गविहीन, समाजवादी समाज को संगठित करना है।

यही कारण है कि अक्टूबर क्रान्ति की *विजय* मानव जाति के इतिहास में एक आमूलगामी परिवर्तन का द्योतक है, विश्व पूंजीवाद की ऐतिहासिक नियति में एक आमूलगामी परिवर्तन का द्योतक है, विश्व सर्वहारा के मुक्ति आन्दोलन में एक आमूलगामी परिवर्तन का द्योतक है तथा संगठन के रूपों एवं संघर्ष की पद्धतियों में, जीवन के तौर-तरीकों एवं परम्पराओं में, शोषित जनगण की संस्कृति और विचारधारा में एक आमूलगामी परिवर्तन का द्योतक है।

यही वह बुनियादी कारण है जिसके नाते अक्टूबर क्रान्ति एक अन्तरराष्ट्रीय, विश्व स्तर की क्रान्ति है। यही उस गहरी हमदर्दी का भी स्रोत है जो सभी देशों के उत्पीड़ित वर्ग अक्टूबर क्रान्ति के प्रति रखते हैं, जिसे वे अपनी खुद की मुक्ति की प्रतिज्ञा के रूप में देखते हैं।

...अक्टूबर क्रान्ति, सर्वोपरि तौर पर इसलिए उल्लेखनीय है कि इसने विश्व साम्राज्यवाद की अग्रिम पंक्ति को भेद डाला, इसने दुनिया के सबसे बड़े पूंजीवादी देशों में से साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंका और समाजवादी सर्वहारा वर्ग को सत्तासीन कर दिया।

मानव जाति के इतिहास में *पहली बार* उजरती मजदूरों का वर्ग, सताये-कुचले गये लोगों का वर्ग, उत्पीड़ितों और शोषितों का वर्ग *शासक* वर्ग की हैसियत तक ऊपर उठा है और उसने सभी देशों के सर्वहाराओं के सामने एक ऐसी मिसाल पेश की है जो संक्रामक है।

इसका मतलब है कि अक्टूबर क्रान्ति ने एक नये युग का, *साम्राज्यवाद* के देशों में सर्वहारा क्रान्तियों के युग का *सूत्रपात किया है।*

भूस्वामियों और पूंजीपतियों की सत्ता पलटकर, अक्टूबर क्रान्ति ने राष्ट्रीय एवं औपनिवेशिक उत्पीड़न की जंजीरों को तोड़ डाला है तथा निरपवाद रूप से, एक विशाल राज्य के समस्त उत्पीड़ित जन समुदायों को इनसे मुक्त कर दिया है। समस्त उत्पीड़ित जनता को मुक्त किये बिना सर्वहारा खुद को मुक्त नहीं कर सकता। यह अक्टूबर क्रान्ति की एक अभिलाक्षणिक विशिष्टता है कि इसने सोवियत संघ के भीतर इन राष्ट्रीय-औपनिवेशिक क्रान्तियों को राष्ट्रों के बीच शत्रुता एवं टकराव के झण्डे तले नहीं बल्कि सोवियत संघ की विभिन्न जनताओं के मजदूरों और किसानों के आपसी विश्वास एवं बिरादराना पुनर्मेल के झण्डे तले सम्पन्न किया, *राष्ट्रवाद* के नाम पर नहीं बल्कि *अन्तरराष्ट्रीयतावाद* के नाम पर सम्पन्न किया।

चूंकि हमारे देश में राष्ट्रीय-औपनिवेशिक क्रान्तियां सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में और अन्तरराष्ट्रीयतावाद के झण्डे तले सम्पन्न हुईं, यही कारण है कि मानव जाति के इतिहास में *पहली बार*, अस्पृश्य लोगों को, गुलाम लोगों को ऐसे लोगों का दर्जा मिला जो *वास्तव में* आजाद थे, *वास्तव में* समान थे। इसतरह समूची दुनिया के उत्पीड़ित राष्ट्रों के सामने एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत हुआ।

इसका मतलब है कि अक्टूबर क्रान्ति ने एक नये युग का, *औपनिवेशिक* क्रान्तियों के युग का *सूत्रपात* किया जो दुनिया के उत्पीड़ित देशों में सर्वहारा वर्ग के साथ *संश्रय में* और सर्वहारा वर्ग के *नेतृत्व* के अन्तर्गत सम्पन्न हो रही हैं...

साम्राज्यवाद की चूलें हिला देने के साथ ही, अक्टूबर क्रान्ति ने—प्रथम सर्वहारा अधिनायकत्व की शक्ल में—विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए एक ऐसे शक्तिशाली और मुक्त *आधार* का निर्माण किया है जो पहले *कभी नहीं था* और अब जिसपर यह (विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन -अनु.) सहायता के लिए भरोसा कर सकता है। इसने विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन के एक शक्तिशाली और मुक्त केन्द्र का निर्माण किया है जो पहले *कभी नहीं था* और जिसके इर्दगिर्द यह (विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन -अनु.) *साम्राज्यवाद* के विरुद्ध सभी देशों के उत्पीड़ित जन समुदायों और सर्वहाराओं को अब गोलबन्द कर सकता है तथा इनका *संयुक्त क्रान्तिकारी मोर्चा संगठित कर सकता है.*

(नवम्बर, 1927)

...रूसियों ने अक्टूबर क्रान्ति सम्पन्न की और संसार में पहले समाजवादी राज्य की स्थापना की। रूस के महान सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता की क्रान्तिकारी शक्ति, जो अभी तक छिपी हुई थी और जिसे दूसरे देश के लोग नहीं देख पाये थे, लेनिन और स्तालिन के नेतृत्व में यकायक ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ी, और चीनी लोग तथा सारी मानव जाति रूसियों की तरफ बिल्कुल दूसरी नजरों से देखने लगे। तभी और केवल तभी चीनियों ने विचारधारा व जीवन के क्षेत्र में एक बिल्कुल नये युग में प्रवेश किया। उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद को, इस विश्व-व्यापी सच्चाई को प्राप्त कर लिया जो हर जगह लागू होती है, और इस तरह चीन का रूप बदलने लगा।

रूसियों के जरिए ही चीनियों ने मार्क्सवाद को प्राप्त किया। अक्टूबर क्रान्ति से पहले जनता सिर्फ लेनिन और स्तालिन को ही नहीं, बल्कि मार्क्स और एंगेल्स को भी नहीं जानती थी। अक्टूबर क्रान्ति की तोपों की गूंज के साथ मार्क्सवाद-लेनिनवाद हमारे देश में पहुंचा। अक्टूबर क्रान्ति ने संसार के अन्य भागों की ही तरह चीन के प्रगतिशील तत्वों को भी अपने देश के भविष्य का अध्ययन करने और अपनी समस्याओं पर नये सिरे से विचार करने के लिए सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण लागू करने में मदद दी।

• माओ त्से-तुङ

('जनता के जनवादी अधिनायकत्व के बारे में')

नागरिको!
आज "भूतपूर्व कालों" के हजारों वर्ष ध्वस्त हो चुके हैं
आज फिर से जांच-परख की जा रही है दुनियाओं की बुनियाद की।

आज
हम जिन्दगी को बदल डालेंगे अपने पोशाक के आखिरी बटन तक एकदम नई।

नागरिको!
यह पहला दिन है मजदूरों के प्रलय-प्रवाह का।

हम आ रहे हैं
इस अस्त-व्यस्त दुनिया का उद्धार करने
भीड़ को प्रकम्पित करने दो अपने पैरों की धमक से आकाशों को
क्रोधोन्माद में शामिल हो जाने दो जहाजी बेड़ों के भोंपुओं की आवाज।

—व्लादीमिर मयाकोव्स्की

अक्टूबर की हवाएं फिर उठेंगी...

(पेज 8 से आगे)

चूके। लेकिन सोवियत सर्वहारा अपने वर्ग-अधिनायकत्व की हिफाजत में सफल रहा। वर्ग-समाजों के हजारों वर्षों के इतिहास में पहली बार उत्पादन के साधनों—कारखानों, खेतों आदि को पूरे समाज की मिल्कियत बना दिया गया। नये समाजवादी उद्योग और कृषि ने विकास के नये कीर्तिमान स्थापित करते हुए अतीत की औद्योगिक क्रान्तियों को पीछे छोड़ दिया। विज्ञान और तकनोलॉजी के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व तरक्की हुई। बेरोजगारी, निरक्षरता, वेश्यावृत्ति, नारी-उत्पीड़न, कुपोषण-जनित बीमारियों और सामाजिक अपराधों का नामोनिशान मिट गया, सामाजिक विषमता की गहरी खाइयां पाट दी गईं, परजीविता की अमरबेल सूख गई और पूरा सोवियत समाज ज्यादा से ज्यादा उन्नत समता-मूलकता की दिशा में लगातार लम्बे डग भरता रहा। यह जागृत मेहनतकश जनता की एकजुट शक्ति और फौलादी संकल्पों का ही नतीजा था कि दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान जर्मन नात्सी साम्राज्यवादियों की पूरी सामरिक शक्ति के सामने सोवियत संघ टिका रहा और फिर उसे धूल में मिलाने के काम को भी उसी ने अंजाम दिया।

•

पेत्रोग्राद के मजदूर जब शीतप्रासाद की ओर बढ़ रहे थे तब शायद उन्हें यह अहसास नहीं रहा होगा कि वे मानवता के इतिहास के एक नये अध्याय का पन्ना पलटने जा रहे हैं। उनकी बंदूकों ने रूसी क्रान्ति के साथ ही दूसरे देशों में भी क्रान्तियों की राह को रौशन किया। रूसी क्रान्ति की गौरवशाली विरासत को आगे विस्तार देते हुए चीन में माओ ने इस सदी की दूसरी महानतम क्रान्ति को अंजाम दिया। चीन की लोक जनवादी क्रान्ति ने साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और नौकरशाह-दलाल पूंजीवाद के विरुद्ध दीर्घकालिक लोकयुद्ध के रास्ते से विजय प्राप्त की।

अक्टूबर क्रान्ति का ऐतिहासिक महत्व और उसका ऐतिहासिक संवेग आज की दुनिया में भी बरकरार है। सर्वहारा क्रान्तियों की विश्वव्यापी पराजय का यह अर्थ कत्तई नहीं हो सकता कि सर्वहारा क्रान्तियों का युग बीत गया। अपने स्वरूप व कार्यप्रणाली में तमाम बदलावों के बावजूद दुनिया जबतक साम्राज्यवाद के युग में जी रही है, तबतक सर्वहारा क्रान्ति के युग में ही जी रही है।

आने वाली सदी की नई सर्वहारा क्रान्तियों के नये चक्र के लिए अक्टूबर क्रान्ति की शिक्षाओं का महत्व बना रहेगा। अक्टूबर का रास्ता हथियारों के बल पर सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता हासिल करने का रास्ता था। उसके बाद की सर्वहारा क्रान्तियों का भी यही रास्ता था और आने वाले दिनों की सर्वहारा क्रान्तियों का रास्ता भी यही होगा।

आज सोवियत संघ का अस्तित्व नहीं रह गया है। 1954 में स्तालिन की मृत्यु के बाद वहां ख्रुश्चेवी नकली समाजवाद के झण्डे तले पूंजीवाद की फिर से बहाली हो गई। गोर्बाचोव-येल्तसिन काल में उस नकली लाल झण्डे को भी फेंक दिया गया और पूंजीवादी तानाशाही नग्न रूप में कायम हो गई। माओ त्से-तुङ ने चीन में सांस्कृतिक क्रान्ति के प्रयोग द्वारा पूंजीवादी पुनर्स्थापना के खतरों से लड़ते हुए और उनका क्रमशः खात्मा करते हुए समाजवाद को आगे ले जाने के रास्ते की खोज तो की, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद वहां भी चीनी नकली कम्युनिस्टों के नेतृत्व में नई पूंजीवादी सत्ता बहाल हो गई।

आज पीछे मुड़कर जब इतिहास के गुजरे दशकों पर हम नजर डालते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बीसवीं सदी के पूंजीवाद के तमाम अन्दरूनी संकट और ठहराव के बावजूद विश्व स्तर पर वर्ग शक्ति संतुलन अभी सर्वहारा क्रान्तियों के निरन्तर आगे बढ़ते जाने के अनुकूल नहीं था। वैसे इतिहास इस तरह आगे बढ़ता भी नहीं। वह आगे-पीछे होता हुआ आगे बढ़ता है। वैसे यह मूल्यांकन उस समय किया भी नहीं जा सकता था जब जनक्रान्तियों के ज्वार के दबाव में साम्राज्यवाद लगातार पीछे हट रहा था। यह मूल्यांकन, आज की प्रतिकूल स्थितियों में सिंहावलोकन करते हुए ही किया जा सकता है। और यह भी आज का ही वस्तुपरक मूल्यांकन है कि विश्व पूंजीवाद का स्वरूप आज जितना अनुत्पादक और परजीवी है तथा आज इसके संकटों-समस्याओं की असाध्यता की जो प्रकृति है, वैसी पहले कभी नहीं थी। वह अपने संकटों से बेहाल, पूरी दुनिया में और खासकर तीसरी दुनिया में मेहनतकश आबादी पर जो कहर बरपा कर रहा है, उसका सिलसिला अन्तहीन हो ही नहीं सकता। यही अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करण की वस्तुगत जमीन है।

सर्वहारा क्रान्ति की जो बिखरी हुई चेतनशील नेतृत्वकारी शक्तियां हैं, वे अक्टूबर क्रान्ति और चीनी सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं को आत्मसात् करके मार्क्सवाद के आलोक में आज की स्थितियों का अध्ययन करके, प्रयोगों के एक सिलसिले के बाद जब नई क्रान्तियों के स्वरूप और रास्ते की समझदारी विकसित कर लेंगी, तो उनकी एकजुटता की प्रक्रिया तेजी से आगे बढ़ेगी। साम्राज्यवाद के नये दौर का नक्शा साफ हो रहा है। संक्रमणकाल बीत रहा है। दुनिया के अलग-अलग कोनों से उभड़ते-फूटते वर्ग संघर्ष के मुखर रूप आने वाले तूफान का संकेत दे रहे हैं। अक्टूबर क्रान्ति की हवाएं पूरी तरह से मरी तो कभी नहीं थीं। और सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की समझ से इतिहास को खंगालने और वर्तमान के कोख में छिपे भविष्य के बीजों को निरखने-परखने के बाद, पूरे भरोसे के साथ कहा जा सकता है कि आने वाले दिनों में वे फिर प्रचण्ड चक्रवाती तूफान बनकर उठेंगी। इक्कीसवीं सदी भूकम्पकारी उथल-पुथल की सदी होगी, यह हमारा गहरा विश्वास है। •

उन्नीस सौ सत्रह, सात नवम्बर

मर रहा है रूसी साम्राज्य
शीत प्रासाद में सुनाई नहीं देती लहंगों की रेशमी सरसराहट
और न ही जार की ईस्टर की प्रार्थनाएं,
न ही साइबेरिया की ओर जाती सड़कों पर जंजीरों का क्रंदन...
मर रहा है, रूसी साम्राज्य मर रहा है...

अब और नहीं भीगेंगी पोमेचिकों की पीली मूंछें
वोदका के गिलासों में
भूख से मरते मुझिकों की ताम्बई दाढ़ियां
अब और नहीं जलेंगी
काली मिट्टी पर चिल्लू भर रक्त की तरह
और आज
मौत
जो बढ़ रही है रूसी साम्राज्य की ओर
नहीं है उसका पीला सिर
पांचा नहीं बल्कि
उसके हाथों में है एक ओजस्वी लाल झण्डा
और उसके गालों पर युवापन की रक्ताभा

उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर
अपने धीर-मन्द्र स्वर में
लेनिन ने कहा :
"कल बहुत जल्दी होता और कल बहुत देर हो चुकी रहेगी,
समय है आज।"
मोर्चे से आते हुए सैनिक ने
कहा, "आज!"
खन्दक जिसने मार डाला था भूख से मौत को, उसने
कहा, "आज!"
अपनी भारी, इस्पाती काली
तोपों से, अव्रोरा ने
कहा, "आज!"
कहा, "आज!"
और यूं दर्ज की बोल्शेविकी ने इतिहास में
इतिहास के सर्वाधिक गम्भीर मोड़ बिन्दु की तारीख :
उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर।

—नाजिम हिकमत
(1925)

...और बाद में लेनिन बोलने के लिए खड़े हुए। मिनटों तक तालियों की गड़गड़ाहट होती रही, लेकिन वह जाहिरा उससे बेखबर लोगों के खामोश हो जाने का इंतजार करते हुए खड़े रहे—अपने सामने रीडिंग स्टैण्ड को पकड़े, वह अपनी छोटी-छोटी मिचमिचाती आंखों से भीड़ को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देख रहे थे। जब तालियां बन्द हुईं, उन्होंने निहायत सादगी से बस इतना ही कहा, "अब हम समाजवादी व्यवस्था का निर्माण शुरू करेंगे!" और फिर जनसमुद्र का वही प्रचण्ड गर्जन।

"पहला काम है शान्ति सम्पन्न करने के लिए अमली कार्रवाई करना ...हम सोवियत शर्तों के आधार पर सभी युद्धरत देशों की जनता से शान्ति का प्रस्ताव करेंगे। ये शर्तें हैं बगैर संयोजनों के, बगैर हरजानों के और जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ शान्ति। साथ ही, अपने वायदे के मुताबिक हम गुप्त संधियों को प्रकाशित करेंगे और उन्हें रद्द करेंगे... युद्ध और शान्ति का प्रश्न इतना स्पष्ट है कि मेरा ख्याल है कि मैं बिना किसी प्रस्तावना के सभी युद्धरत देशों के जनों के नाम घोषणा के मसौदे को पढ़ सकता हूं..."
(इसके बाद उन्होंने पूरी घोषणा पढ़ी।)

...उन्होंने अपना भाषण इन शब्दों के साथ खत्म किया, "6 और 7 नवम्बर की क्रान्ति ने समाजवादी क्रान्ति के युग का सूत्रपात किया है... शान्ति और समाजवाद के नाम पर मजदूर आन्दोलन जीतेगा और अपने भवितव्य को चरितार्थ करेगा..."

इन शब्दों में एक अद्भुत निष्कम्प शक्ति थी जो प्राणों को आलोड़ित करती थी। इसे आसानी से समझा जा सकता है कि क्यों जब लेनिन बोलते थे, लोग उनकी बात पर विश्वास करते थे....

...ठीस दस बजकर पैंतीस मिनट पर कामेनेव ने कहा कि जो लोग घोषणा के पक्ष में हैं, वे अपने कार्ड दिखायें। केवल एक प्रतिनिधि ने विरोध में अपना हाथ उठाने की जुर्रत की, लेकिन इसपर चारों ओर लोगों में इतना गुस्सा भड़क उठा कि उसने भी अपना हाथ जल्दी से नीचे कर लिया... घोषणा सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गयी।

सहसा हम सब एक ही सहज प्रेरणा के वशीभूत होकर उठ खड़े हुए और 'इण्टरनेशनल' का मुक्त, निर्बाध, आरोही स्वर हमारे कण्ठों से फूट निकला। एक पुराना, खिचड़ी बालों वाला सिपाही बच्चे की तरह फूट-फूट कर रो पड़ा। अलेक्सान्द्रा कोल्लोन्ताई ने जल्दी से अपने आंसुओं को रोका। एक हजार कण्ठों से निकली यह प्रबल ध्वनि सभा भवन में तरंगित होकर खिड़कियों-दरवाजों से बाहर निकली और ऊपर उठती गयी, ऊपर उठती गयी और निभृत आकाश में व्याप्त हो गयी। "लड़ाई खत्म हो गई! लड़ाई खत्म हो गई!" मेरे पास खड़े एक नौजवान मजदूर ने कहा, जिसका चेहरा चमक रहा था। और जब यह गान समाप्त हो गया और हम वहां निस्तब्ध खोये-से खड़े थे, हाल के पीछे से किसी ने आवाज दी, "साथियो, हम उन लोगों को याद करें, जिन्होंने आजादी के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया।" और इस प्रकार हमने शोकगान 'शवयात्रा' गाना शुरू किया, जिसका स्वर धीमा और उदास होते हुए भी विजयपूर्ण था। यह था दिल को हिला देने वाला एक ठेठ रूसी गाना। कुछ भी हो, 'इण्टरनेशनल' का राग विदेशी ही ठहरा, परन्तु 'शवयात्रा' में उस विशाल जनता के प्राणों की गूंज थी, जिसके प्रतिनिधि इस हॉल में बैठे थे और अपने धुंधले-धुंधले मानस-चित्र के आधार पर नये रूस का सृजन कर रहे थे—और शायद और भी ज्यादा...

—जॉन रीड : 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी'

...जब हम बाहर धुंध और कुहासे में निकले, नगर के चतुर्दिक् कारखानों के भोंपू बज रहे थे और उनकी परुष, कर्कश तथा व्याकुल ध्वनि एक प्रकार से आने वाली घटनाओं का पूर्वाभास देती थी। दसियों हजार कमकर—मर्द और औरत—बाहर निकल पड़े थे। गुंजान बस्तियों और चालों से दसियों हजार मटमैले और मैले-कुचैले लोग झुण्ड के झुण्ड टिड्डी दलों की तरह निकल पड़े थे। लाल पेत्रोग्राद खतरे में था! कज्जाक आ रहे थे! दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की ओर ये लोग गंदी गलियों से होकर मोस्कोव्स्काया द्वार की ओर बढ़ रहे थे, बन्दूकें, फरसे-कुल्हाड़े, तार के बण्डल लिए मर्द, औरतें और बच्चे, अपने काम करने के कपड़ों के ऊपर कारतूस की पेटियां डाले हुए.. एक पूरा शहर इसतरह अपने-आप बाहर निकल पड़ा हो, आज तक कभी भी ऐसा नहीं देखा गया! ऐसा लगता था, जैसे एक जन-समुद्र उमड़ पड़ा हो—सिपाहियों के दस्ते, तोपें, ट्रकें, छकड़ा गाड़ियां, सब के सब उसी धारा में बहे जा रहे थे। क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग मजदूरों और किसानों के जनतंत्र की राजधानी को अपनी छाती ठोंककर बचाने पर तुला हुआ था।

पौ फटी और केरेन्स्की के कज्जाकों की गश्ती टुकड़ियों के साथ इन सिपाहियों का सामना हुआ। छिटपुट गोलियां चलीं और आत्मसमर्पण करने को कहा गया। बीहड़ मैदान में ठण्डी खामोश हवा में लड़ाई की आवाज गूंजने लगी और यह आवाज अपने छोटे-छोटे अलावों के चारों ओर बैठे इंतजार करते हुए झुण्ड के झुण्ड घुमन्तू सिपाहियों के कानों में पड़ी... अच्छा, तो लड़ाई शुरू हो रही है। और ये सिपाही लड़ाई के मैदान की तरफ बढ़े। सीधे राजमार्गों से आ रहे मजदूरों ने अपने कदम बढ़ाये ... इसप्रकार आक्रमण के प्रत्येक बिन्दु पर क्रुद्ध मानवों के झुण्ड अपने आप बटुर गये, जहां पहुंचते ही कमिसारों ने उनका स्वागत किया, उन्हें खास-खास जगहों में तैनात किया और बताया कि उन्हें क्या काम करना है। यह उनकी अपनी लड़ाई थी, अपनी दुनिया के लिए उनकी लड़ाई और जिन अफसरों के हाथ में उनकी कमान थी वे उन्हीं के द्वारा चुने गये थे। इस घड़ी असंख्य इच्छाएं एकाकार होकर एक इच्छा में बदल गई थीं।

—जॉन रीड : 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी'

सरकारी आतंकवाद के खूनी पंजे, पूंजीवादी लोकतंत्र का चिथड़ा झण्डा और भाजपा सरकार के फासिस्ट चरित्र का नंगापन

(पेज 1 से आगे)

कि संस्कृतिकर्मियों-मानवाधिकारकर्मियों पर भी सैकड़ों मुकदमे चल रहे हैं।

उपरोक्त घटना के कुछ ही दिनों बाद 11 नवम्बर को आन्ध्र के वारंगल जिले में एक गांव में बैठक कर रहे भा.क.पा. मा-ले (जनशक्ति) संगठन के चार कार्यकर्ताओं की पुलिस ने हत्या कर दी जिनमें दो महिलाएं भी थीं। इसके तीन दिन बाद आंध्र के ही करीमनगर जिले में उपरोक्त शहीद साथियों की याद में आयोजित सभा पर धावा बोलकर पुलिस ने जनशक्ति ग्रुप के ही चार और कार्यकर्ताओं की हत्या कर दी।

बिहार में भी क्रान्तिकारी वामपंथी कार्यकर्ताओं की हत्या, और उन्हें समर्थन देने वाले गरीबों के उत्पीड़न का सिलसिला लालू सरकार ने लगातार जारी रखा है। भाजपा-समता समर्थक/समर्थित रणवीर सेना और प्रतिक्रियावादी भूस्वामियों के सशस्त्र दस्ते भी इस काम में आतंकवादी पुलिस तंत्र का बढ़चढ़कर साथ दे रहे हैं। भोजपुर, रोहतास, सासाराम और जहानाबाद क्षेत्र में दमन लगातार बढ़ता जा रहा है।

उत्तरप्रदेश की भाजपा सरकार भी इसमें पीछे नहीं है। अभी पिछले दिनों बिहार-उत्तरप्रदेश सीमा पर चकिया-चन्दौली क्षेत्र में पुलिस ने कुछ अल्पवयस्क लड़कियों को गिरफ्तार कर लिया है और यह आरोप लगाया है कि ये लड़कियां माओवादी कम्युनिस्ट केन्द्र के "खूंखार आतंकवादियों" की मदद करती हैं। राज्य के अलग-अलग हिस्सों में क्रान्तिकारी वामपंथी कार्यकर्ताओं पर फर्जी मुकदमे थोपे जा रहे हैं। तराई क्षेत्र के उद्योगों में विगत दो-तीन वर्षों के दौरान उठते रहने वाले औद्योगिक मजदूरों के संघर्षों में जो भी क्रान्तिकारी जन-संगठन सहयोग करते रहे हैं उन्हें "अशान्ति भड़काने वाले उग्रवादी" बताने वाले बयान तराई क्षेत्र के उद्योगपतियों के संगठन और राज्य की भाजपा सरकार के मंत्री (जो उस विधानसभा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं) सुर में सुर मिलाकर जारी करते रहे हैं और क्षेत्रीय अखबार उन्हें खूब "सनसनीखेज" खबर के रूप में उछालते रहे हैं। दूसरी ओर, सरकारी तंत्र की पूरी मदद से कारखानों के मालिकान भाड़े के गुण्डों की मदद से जबर्दस्त "आतंकराज" कायम करके आन्दोलनों को कुचलते रहे हैं, पर यह सच्चाई किसी भी क्षेत्रीय अखबार में नहीं स्थान पाती रही है।

उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के दमन और सफाये का अभियान देश के अन्य हिस्सों में भी जारी है। हाल ही में राजस्थान में भाकपा मा-ले (न्यू डेमोक्रेसी) संगठन के एक कार्यकर्ता की पुलिस ने फर्जी मुठभेड़ में हत्या कर दी। यूं इस काम में म.प्र. और महाराष्ट्र की कांग्रेसी सरकारें भी केन्द्र और राज्यों की भाजपा सरकारों से पीछे नहीं हैं। वामपंथी कार्यकर्ताओं-संस्कृतिकर्मियों को धमकाने-प्रताड़ित करने का सिलसिला वहां भी लगातार जारी है।

विगत एक वर्ष के भीतर देश के विभिन्न हिस्सों में सैकड़ों कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पुलिस की गोलियों के शिकार बने हैं और हजारों को गिरफ्तार करके उनके ऊपर तरह-तरह के फर्जी मुकदमे थोप दिये गये हैं। और यह सिलसिला अब लगातार तेज होता दिखाई दे रहा है।

जो इस व्यवस्था के औचित्य पर सवाल उठाते हैं, उनके लिए कोई कानून नहीं!

देखा जाये तो यह स्थिति कोई अप्रत्याशित नहीं है। इस स्थिति पर अचंभा शायद उसी को होगा जिसके दिमाग में पूंजीवादी जनतंत्र को लेकर कोई भ्रम मौजूद हो। जुबानी जमाखर्च के बजाय, जैसे ही कोई राजनीतिक शक्ति इस राजनीतिक व्यवस्था और राज्यसत्ता के असली चरित्र को उजागर करना शुरू करती है, तमाम समस्याओं के समाधान के तौर पर सामाजिक क्रान्ति का विकल्प प्रस्तुत करना शुरू करती है, इस सच्चाई को आम मेहनतकश जनता तक ले जाने की कोशिश करती है और विभिन्न मसलों-मांगों पर संगठित होकर लड़ने के लिए उसका आह्वान करती है, वैसे ही पूंजीवादी जनवाद के रामनामी दुपट्टे के भीतर से दमन-उत्पीड़न के तमाम खंजर-बघनखे बाहर आ जाते हैं और सरकारी प्रचार-तंत्र में कार्यरत गोयबेल्स की औलादों से लेकर पूंजीवादी अखबारों के भाड़े के टट्टू एक स्वर से "आतंकवादी-उग्रवादी-देशद्रोही" आदि-आदि की गुहार लगाने लगते हैं। यह भारत ही नहीं, ज्यादा "जनवादी" माने जाने वाले पूंजीवादी देशों में भी होता है।

उदारीकरण की नीतियों पर अमल के तथाकथित दूसरे दौर में, फासिस्ट भाजपा-पतित सामाजिक जनवादी गठबंधन के शासनकाल में यदि दमन का लगातार सिलसिला एक बार फिर रफ्तार पकड़ रहा है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ये आर्थिक नीतियां आने वाले दिनों में पूरे देश की मेहनतकश किसान-मजदूर जनता और आम मध्य वर्ग पर जो कहर बरपा करने वाली हैं, उनके नतीजे के तौर पर बढ़ता जन असंतोष देशव्यापी जन उभार की शक्ल ले सकता है। इतिहास की नसीहत शासक वर्गों के भी सामने है और तदनुरूप वे आने वाले दिनों की तैयारी कर रहे हैं। विगत आठ-नौ वर्षों के दौरान, यहां-वहां मजदूरों-किसानों के जो भी आन्दोलन हुए हैं, उनका नृशंसतापूर्वक दमन होता रहा है। राजनीतिक ताकतों में, राज्यसत्ता के दमन का सबसे अधिक सामना लगातार कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने किया है और यह सिलसिला 1967 से ही लगातार जारी है। इसका कारण यह है कि शासक वर्ग के समझदार राजनीतिक प्रतिनिधि, चाहे वे किसी भी दल में हो, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की आज की बिखरावपूर्ण स्थिति और समस्याओं के बावजूद उसे ही हर-हमेशा, इस व्यवस्था के लिए वास्तविक, संभावना-सम्पन्न चुनौती के रूप में देखते हैं। वे जानते हैं कि यह बुझने वाली मशाल नहीं है और देर-सबेर अपने ठहराव से मुक्त होकर यह जब आगे बढ़ेगी तो उदारीकरण कुचक्र से त्रस्त जनता का बगावती सैलाब उससे आ जुड़ सकता है और वह स्थिति उनके लिए विनाशकारी होगी।

यही कारण है कि उदारीकरण-निजीकरण मुहिम को सरपट दौड़ाने के साथ ही फासिस्ट भाजपा सरकार ने एक ओर जनान्दोलनों और दूसरी ओर क्रान्तिकारी राजनीतिक शक्तियों पर दमन चक्र भी तेज कर दिया है। आर्थिक नीतियों पर भाजपा सरकार से सहमत बुर्जुआ पार्टियां उसकी दमन-नीति से भी सहमत हैं, इसलिए चुप हैं। चुनावी वामपंथी बकरियां कभी-कभी रस्म-अदायगी के लिए विरोध में थोड़ा मिमिया लेती हैं। लेकिन इस पूरी स्थिति का सकारात्मक पहलू यह है कि जनवादी अधिकारों की हिफाजत के लिए सही, जुझारू जनवादी चेतना से लैस बुद्धिजीवियों का एक बड़ा हिस्सा आज नये सिरे से लोक-अधिकार के प्रश्न पर उद्वेलित है और एक व्यापक जनाधार वाले सशक्त लोक-अधिकार आन्दोलन खड़ा करने के प्रश्न पर सहमति का दायरा विस्तारित हो रहा है। यह जरूरी है। दमन-तंत्र का प्रतिकार मुख्यतः संगठित मेहनतकश जनता के बूते ही किया जा सकता है पर जनवादी अधिकार आंदोलन भी उसका एक अहम मोर्चा है—इस बात को भुलाना बहुत नुकसानदेह होगा।

अपराधी यह सत्ता है और असली व सबसे बड़ा आतंकवाद है—सरकारी आतंकवाद!

अभी एक वर्ष पहले ही गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने हैदराबाद में भाषण देते हुए देश को (यानी धनपतियों को) चेताया था कि "नक्सलवाद" के खतरे को कम करके कतई नहीं आंका जाना चाहिए और इसका समूल नाश किये बिना देश हित की (यानी पूंजीपतियों के हित की) बात सोची भी नहीं जा सकती। आडवाणी ने "नक्सलवादियों" को अपराधी बताते हुए "नक्सलवाद"-विरोधी फोर्स को और व्यापक तथा सशक्त बनाने तथा "नक्सलवादियों" से "निपटने" के लिए उन्हें खुला हाथ देने पर विशेष जोर दिया था।

लेकिन "नक्सलवादियों" को अपराधी घोषित करते हुए आडवाणी यह भूल गये कि कभी जे.पी., चन्द्रशेखर, आज के उपराष्ट्रपति कृष्णकान्त आदि बुर्जुआ नेता भी उन्हें अपने मतभेदों के बावजूद "सुनिश्चित सिद्धान्तों और प्रतिबद्धता वाले लोग" बता चुके हैं तथा भाजपा-गठबंधन के संयोजक और मंत्री जार्ज फर्नाण्डिज भी कभी उन्हें "देशभक्त" बता चुके हैं। पिछले तीस वर्षों से बुर्जुआ मीडिया के लगातार प्रचार और उसके ही द्वारा गढ़े गये "नक्सलवाद" शब्द को "खूंखार" छाप-छवि देने के बावजूद व्यापक आम जनता, क्रान्तिकारी वामपंथियों को उनके कार्यक्षेत्रों में अपने सही-सच्चे नुमाइन्दे और साथी के रूप में देखती है—यह एक सर्वस्वीकृत सच्चाई है।

दूसरी बात यह कि यदि नक्सलवादी खूंखार आतंकवादी होते भी, तो भी पुलिस को यह अधिकार नहीं कि वह सड़क पर ही उन्हें मनमानी "सजा" सुना दे। पूंजीवादी जनवाद का न्याय विधान और संविधान भी इसकी इजाजत नहीं देते। पर सच्चाई यह है कि ये उसूल तो महज दिखाने के दांत हैं। और अब तो ये दिखाने के दांत भी झड़ चुके हैं। फर्जी मुठभेड़ों और पुलिस अत्याचार की सच्चाई व्यवस्था के पोषक भी अनेकों बार स्वीकार कर चुके हैं।

सच तो यह है कि पूरे देश में पूर्वोत्तर भारत से लेकर कश्मीर तक, आन्ध्र से लेकर बिहार तक सबसे बड़ा आतंकवाद है—सरकारी आतंकवाद। भारतीय पुलिस और अर्द्धसैनिक बल इस आतंकवाद के प्रमुख उपकरण हैं और यह दुनिया की सबसे जालिमाना पुलिस फोर्स है जिसे भारतीय न्यायपालिका के एक न्यायाधीश ही "गुण्डों का सर्वाधिक संगठित गिरोह" बता चुके हैं। सरकारी आतंकवादी मशीनरी यदि देश के विभिन्न हिस्सों में गरीबों-मेहनतकशों को अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए संगठित कर रहे वामपंथी क्रान्तिकारियों को अपना शिकार बना रही है तो यही इस बात का सबूत है कि सत्ताधारी खतरा कहां से महसूस करते हैं और डरते किनसे हैं। शोषक वर्ग जिनसे डरता है, वही जनता के सच्चे दोस्त हो सकते हैं—यह जाहिर सी बात है। आडवाणी जी ने जो कहा था, वह सच ही कहा था।

मगर मुश्किल तो यह है कि आडवाणी जैसे लोग और वे जिन शासक वर्गों की चाकरी बजाते हैं, वे देश-दुनिया के इतिहास और वर्तमान से यह सीख कभी नहीं ले पाते कि दमन का बर्बरतम तंत्र भी मुक्ति की आकांक्षाओं और मुक्तिकामी शक्तियों का गला कभी भी नहीं घोंट पाया है। जहां दमन है वहीं प्रतिरोध है। दमन यदि बढ़ता है तो प्रतिरोध भी बढ़ता है। यह इतिहास का अकाट्य सत्य है। ●

इवान वसील्येविच बाबुश्किन

(पेज 11 से आगे)

मिलकर सोच-विचार किया था। लेकिन इवान वसील्येविच पार्टी की दूसरी कांग्रेस में भाग नहीं ले पाये... जेलों और निर्वासन ने उन्हें देर तक कुछ करने योग्य न छोड़ा। क्रान्ति की उठती लहर नये कार्यकर्ताओं को, पार्टी के नये नेताओं को सामने ला रही थी, और बाबुश्किन इस बीच पार्टी के जीवन से कटे सुदूर उत्तर में, वेर्खोयांस्क में, रह रहे थे। पर उन्होंने समय व्यर्थ नहीं गंवाया, अध्ययन करते रहे, संघर्ष के लिए अपने को तैयार करते रहे, निर्वासन में अपने साथ मजदूरों के बीच सक्रिय रहे, उन्हें सचेतन सामाजिक-जनवादी और बोल्शेविक बनाने के प्रयासों में जुटे रहे। 1905 में राज-क्षमा का आदेश आया और बाबुश्किन रूस को लौट चले। लेकिन उन दिनों साइबेरिया में भी जोरों से संघर्ष चल रहा था और वहां भी बाबुश्किन जैसे लोगों की जरूरत थी। वे इर्कुत्स्क समिति के सदस्य बन गये और तन-मन से काम में जुट गये। उन्हें सभाओं में भाषण देने पड़ते थे, सामाजिक-जनवादी आंदोलन चलाना और विद्रोह का संगठन करना पड़ता था। जब बाबुश्किन अपने पांच अन्य साथियों के साथ—खेदवश हम उनके नाम नहीं जानते—एक अलग रेल डिब्बे में हथियारों की बड़ी खेप चिता* नगर को ले जा रहे थे, तो साइबेरिया में विद्रोह को कुचलने के लिए भेजे गये रेन्नेनकाम्प्फ** के अभियान दल ने रेलगाड़ी रोक ली और छहों के छहों को बिना किसी सुनवाई के वहीं पर जल्दबाजी में खोदी गयी एक साझी कब्र के किनारे खड़ा करके गोलियों से मार डाला। वे वीरों की मौत मरे। प्रत्यक्षदर्शी सैनिकों ने और इस रेलगाड़ी पर जो रेल कर्मचारी थे, उन्होंने उनकी मृत्यु के बारे में बताया। बाबुश्किन जारशाही के लठैत की पाशविक बर्बरता के शिकार हुए। लेकिन मरते समय वह यह जानते थे कि जिस ध्येय को उन्होंने अपना जीवन अर्पित किया है, वह नहीं मरेगा, कि लाखों-करोड़ों लोग यह कार्य करेंगे, कि इस ध्येय के लिए दूसरे साथी मजदूर प्राण देंगे, कि वे तब तक लड़ते रहेंगे, जब तक कि विजय नहीं पा लेते।...

* * *

कुछ लोग ये किस्से गढ़ और फैला रहे हैं कि रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी "बुद्धिजीवियों की" पार्टी है, कि मजदूर उससे कटे हुए हैं, कि रूस में मजदूर सामाजिक-जनवाद के बिना सामाजिक-जनवादी हैं, कि ऐसा खास तौर पर क्रान्ति से पहले और बहुत हद तक क्रान्ति के दौरान था। उदारतावादी उस क्रान्तिकारी जन संघर्ष से, जिसका नेतृत्व 1905 में रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी ने किया, अपनी घृणा के कारण यह झूठ फैला रहे हैं और समाजवादियों में से कुछ अपनी नासमझी या लापरवाही के कारण इसे दोहरा रहे हैं। इवान वसील्येविच बाबुश्किन का जीवन, इस **इस्क्रा-समर्थक मजदूर** का दस वर्ष का सामाजिक-जनवादी कार्य उदारपंथियों के इस झूठ का साफ खंडन करता है। बाबुश्किन उन अग्रणी मजदूरों में से एक थे, जिन्होंने क्रान्ति से दस साल पहले मजदूरों की सामाजिक-जनवादी पार्टी बनानी शुरू की थी। सर्वहारा-समूहों में ऐसे अग्रणी लोगों के अथक, वीरतापूर्ण और सतत कार्य के बिना रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी दस साल तो क्या, दस महीनों तक भी न बनी रह पाती। ऐसे अग्रणी लोगों की गतिविधियों की बदौलत ही, उनके समर्थन की बदौलत ही 1905 तक रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी ऐसी पार्टी बन गयी थी जो अक्टूबर और दिसम्बर के महान दिनों में सर्वहारा के साथ **अभिन्न रूप से एकाकार हो गयी**, जिसने न केवल दूसरी दूमा में, बल्कि तीसरी यमदूत सभाई दूमा में भी अपने **मजदूर प्रतिनिधियों** के रूप में यह संबंध बनाये रखा।

उदारतावादी (कैडेट) पहली दूमा के अध्यक्ष स. अ. मूरोम्त्सेव को, जिनका अभी कुछ समय पहले निधन हुआ है, जन-नायक बनाना चाहते हैं। हमें, सामाजिक-जनवादियों को, जारशाही सरकार के प्रति अपनी घृणा प्रकट करने का मौका नहीं चूकना चाहिए, उस सरकार के प्रति, जो मूरोम्त्सेव जैसे नरमपंथी और नपुंसक अधिकारियों पर भी अत्याचार करती थी। मूरोम्त्सेव सिर्फ नरमपंथी अधिकारी थे। जनवादी तो उन्हें किसी भी तरह से नहीं कहा जा सकता। वह जन साधारण के क्रान्तिकारी संघर्ष से डरते थे। वह ऐसे संघर्ष से रूस के लिए मुक्ति पाने की आशा नहीं करते थे, बल्कि स्वेच्छाचारी जारशाही की सद्भावना से, रूसी जनता के इस निकटतम और निर्मम शत्रु के साथ **समझौते** से। ऐसे लोगों को रूसी क्रान्ति का जन-नायक कहना हास्यास्पद ही है।

लेकिन ऐसे जन-नायक हैं। ये बाबुश्किन जैसे लोग हैं। वे लोग, जिन्होंने क्रान्ति से पहले साल-दो साल नहीं, बल्कि पूरे दस साल मजदूर वर्ग की मुक्ति के लिए संघर्ष को अर्पित किये। ये वे लोग हैं, जिन्होंने इक्के-दुक्कों की आतंकवादी कार्रवाइयों में अपनी शक्ति व्यर्थ नहीं गंवायी, बल्कि दृढ़तापूर्वक, अडिगता से सर्वहारा जन-समूहों में काम करते रहे, **उनकी** वर्ग-चेतना, **उनका** संगठन, **उनकी** क्रान्तिकारी गतिविधियां विकसित करने में मदद करते रहे। ये वे लोग हैं, जिन्होंने संकट की घड़ी आने पर, क्रान्ति के शुरू होने पर, कोटि-कोटि लोगों के गतिशील होने पर स्वेच्छाचारी जारशाही के विरुद्ध सशस्त्र जन-संघर्ष की अगुवाई की। स्वेच्छाचारी जारशाही से जो कुछ जीता गया वह **केवल** जनसमूहों के संघर्ष से ही जीता गया, उस संघर्ष से, जिसका नेतृत्व बाबुश्किन जैसे लोगों ने किया।

ऐसे लोगों के बिना रूसी जनता सदा दासों और तलवा चाटनेवालों की जनता रहती। ऐसे लोगों के साथ रूसी जनता हर तरह के शोषण से पूर्ण मुक्ति पा लेगी।

1905 के दिसम्बर विद्रोह के पांच वर्ष पूरे हो गये हैं। आइये, हम शत्रु के साथ संघर्ष में वीरगति को प्राप्त हुए अग्रणी मजदूरों की स्मृति में शीश नवाकर यह वर्षगांठ मनायें। मजदूर साथियों से हमारा अनुरोध है कि वे उन दिनों के संघर्ष के बारे में संस्मरण जमा करके हमें भेजें, बाबुश्किन के बारे में अतिरिक्त जानकारी भी भेजें और 1905 के विद्रोह में शहीद हुए दूसरे सामाजिक-जनवादी मजदूरों के बारे में भी। हम ऐसे मजदूरों की जीवनियों की पुस्तिका छापने का इरादा रखते हैं। ऐसी पुस्तिका उन सब लोगों को करारा जवाब होगी, जो रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी में पूरा विश्वास नहीं रखते और जो उसकी भूमिका को घटाकर दिखाना चाहते हैं। ऐसी पुस्तिका युवा मजदूरों के लिए श्रेष्ठ पठन-सामग्री होगी। वे इससे यह सीखेंगे कि हर वर्ग-चेतन मजदूर को कैसे जीना और काम करना चाहिए।

(राबोचाया गजेता
अंक 2, 18 (31) दिसंबर 1910
खण्ड 20 पृ. 79-83)

---

* बाद में ज्ञात हुआ कि वे हथियार चिता नगर से ले जा रहे थे। –सं.

** बाद में पता चला कि विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा गया दल अ. न. मेल्लेर-जाकोमेल्स्की का था।–सं.

मजदूर नायक : क्रान्तिकारी योद्धा

बोल्शेविक मजदूर संगठनकर्ता इवान वसील्येविच बाबुश्किन

रूस में जिन थोड़े से उन्नत चेतना वाले मजदूरों ने कम्युनिज्म के विचारों को सबसे पहले स्वीकार किया और फिर आगे बढ़कर पेशेवर क्रान्तिकारी संगठनकर्ता की भूमिका अपनाई तथा पूरा जीवन पार्टी खड़ी करने और क्रान्ति को आगे बढ़ाने के काम में लगाया उनमें पहला नाम **इवान वसील्येविच बाबुश्किन** (1873-1906) का आता है। 1894 में बाबुश्किन जब कम्युनिस्ट बना तो उसकी उम्र महज 21 वर्ष थी।

लेनिन 1893 में पीतर्सबुर्ग आये। इसके पूर्व 1887 में कजान विश्वविद्यालय में पढ़ते समय लेनिन ने क्रान्तिकारी छात्र आन्दोलनों में हिस्सा लेते हुए 17 वर्ष की आयु में **फेदोसेयेव** नामक व्यक्ति द्वारा चलाये जाने वाले मार्क्सवादी मण्डल में हिस्सा लेना शुरू किया। क्रान्तिकारी छात्र आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तारी और कजान से निष्कासन के बाद लेनिन ने अद्भुत गति और एकाग्रता से मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया। कजान से समारा पहुंचने के बाद लेनिन ने उस शहर में पहला मार्क्सवादी मण्डल कायम किया। 1893 के अंत में वे पीतर्सबुर्ग पहुंचे। वहां के मार्क्सवादी मण्डलों के सदस्य उनके सैद्धान्तिक-व्यावहारिक ज्ञान और सांगठनिक क्षमता से बहुत प्रभावित हुए और लेनिन उनके नेता बन गये। यहीं 1894 में उनकी मुलाकात क्रान्तिकारी **क्रुप्स्काया** से हुई जो बाद में उनकी जीवन-सँगिनी भी बनीं।

इवान बाबुश्किन पीतर्सबुर्ग के सेम्यान्निकोव कारखाने में काम करने वाला युवा मजदूर था, जो आम मजदूरों से अलग, अपनी जिन्दगी के हालात और पूंजीपतियों के शोषण-उत्पीड़न के बारे में हमेशा सोचता रहता था। उसे मुक्ति के रास्ते की बेचैनी से तलाश थी। उन दिनों मजदूरों और छात्रों में जारशाही विरोधी जो नई सरगर्मियां थीं, उनका उत्सुकतापूर्वक अध्ययन करते हुए वह मार्क्सवादियों के सम्पर्क में आया। बाबुश्किन का लेनिन से सम्पर्क हुआ और उनसे मार्क्सवाद की शिक्षा लेते हुए वह उन्हें बेहद प्यार करने लगा। लेनिन ने एक योग्य संगठनकर्ता के रूप में बाबुश्किन की सम्भावनाओं को पहचाना और उन्हें विकसित किया।

बाबुश्किन की धीरज भरी, अनथक कोशिशों से ही सेम्यान्निकोव कारखाने में मजदूरों का मार्क्सवादी-मण्डल संगठित हुआ।

मण्डल के अध्ययन चक्रों में मार्क्सवाद पर लेनिन के व्याख्यानों और मजदूरों से उनके सवाल-जवाबों को याद करते हुए बाबुश्किन ने लिखा है : "*व्याख्याता बिना कोई पुस्तक या नोट्स सामने रखे, हमलोगों के सामने इस (मार्क्सवादी) विज्ञान की व्याख्या करता था और अक्सर हमें वह अपने कहे पर आपत्तियां उठाने के लिए, या फिर बहस शुरू करने के लिए उकसाता था। फिर वह बहस करने वालों को आपस में वाद-विवाद करने देता था। इससे पढ़ाई जीवन्त और दिलचस्प हो जाती थी... हम सभी इससे बहुत खुश होते थे और अपने शिक्षक की क्षमता की तारीफ करते थे।*"

पीतर्सबुर्ग के सभी उन्नत चेतना वाले मजदूर लेनिन को प्यार करने लगे और उन्हें अपना नेता मानने लगे। बाबुश्किन के तेजी से हो रहे विकास और सांगठनिक-राजनीतिक नेतृत्वकारी गुणों से लेनिन बहुत प्रभावित हुए।

1894 के अंत में बाबुश्किन के ही सहयोग से लेनिन ने पहला आन्दोलनकारी पर्चा लिखा और सेम्यान्निकोव कारखाने के हड़ताली मजदूरों का नाम एक अपील निकाली।

1895 में लेनिन ने पीतर्सबुर्ग के सभी मार्क्सवादी मजदूर मण्डलों को (जिनकी संख्या उस समय 20 के आसपास थी) जोड़कर **मजदूर मुक्ति-संघर्ष की पीतर्सबुर्ग** लीग नामक संगठन बनाया, जो तत्कालीन मजदूर आन्दोलन के साथ समाजवाद की विचारधारा और राजनीति को जोड़ने वाला पहला संगठन था। मुक्ति संघर्ष लीग (संक्षिप्त नाम) के गठन में भी बाबुश्किन की प्रमुख सहयोगी भूमिका थी। 1895-96 में पीतर्सबुर्ग मजदूर हड़तालों का केन्द्र बन गया था। इन हड़तालों के समर्थन में मुक्ति संघर्ष लीग परचे निकालकर मजदूरों को संघर्ष का रास्ता बताता था, उन्हें अपनी मांगें पेश करने और लड़ने का तरीका बताता था, कारखाना-मालिकों की लूट और अमानवीय उत्पीड़न का तथा उनकी पीठ पर खड़ी जारशाही का भण्डाफोड़ करता था। इन सभी परचों की तैयारी में बाबुश्किन लेनिन का अनन्य सहयोगी था। इन्हें मजदूरों तक पहुंचाने और आन्दोलनों में भागीदारी में भी उसकी भूमिका अग्रणी थी। 1895 के शरद में लेनिन ने थार्नटन मिल के स्त्री-पुरुष हड़ताली मजदूरों के लिए जो पर्चा लिखा, वह उनके संघर्ष को आगे बढ़ाने में विशेष मददगार सिद्ध हुआ। मजदूर अपनी लड़ाई जीत गये। इसके बाद थोड़े से समय में ही मुक्ति-संघर्ष लीग ने विभिन्न कारखानों के मजदूरों के लिए दर्जनों पर्चे और अपीलें निकालीं। मजदूरों में संगठन का व्यापक आधार तैयार हुआ। बड़े पैमाने पर मजदूर मार्क्सवाद को स्वीकार कर पार्टी में भरती होने लगे।

दिसम्बर, 1895 में जारशाही ने लेनिन को गिरफ्तार कर लिया, पर जेल से वे गुप्त सम्पर्क बनाकर मुक्ति-संघर्ष लीग की मदद करते रहे तथा लगातार पुस्तिकाएं और पर्चे लिखते रहे। उधर बाहर बाबुश्किन के साथ अब मजदूर संगठनकर्ताओं की एक पूरी टीम खड़ी हो गई थी जो खुली और गुप्त कार्यवाहियों में दिन-रात लगी हुई थी। ऐसा ही एक मजदूर संगठनकर्ता **वासिली आन्द्रियेविच शेल्गुनोव** भी था, जो बाद में अन्धा हो गया था।

1896 की गर्मी में मुक्ति संघर्ष लीग के नेतृत्व में पीतर्सबुर्ग के तीस हजार सूती मजदूरों की हड़ताल काम के घण्टों को कम करने के प्रश्न पर हुई। इसी हड़ताल के दबाव में जारशाही को जून, 1897 में कानून बनाकर काम के घण्टों पर साढ़े ग्यारह घण्टे की सीमा लगानी पड़ी।

पीतर्सबुर्ग की मुक्ति-संघर्ष लीग की स्थापना से 1898 में रूसी सोशल-डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी की स्थापना तक की यात्रा में सबसे अधिक योगदान करने वालों में बाबुश्किन एक था।

1900 में पहले अखिल रूसी गैरकानूनी अखबार '**इस्क्रा**' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके पीछे लेनिन की एक ऐसे अखबार की सोच काम कर रही थी जो मजदूर वर्ग के शिक्षक, प्रचारक, आन्दोलनकर्ता और संगठनकर्ता की भूमिका निभाते हुए पार्टी-निर्माण और पार्टी-गठन के काम में कुंजीभूत भूमिका निभाये।

प्यूनिख, लन्दन और जेनेवा से प्रकाशित होकर 'इस्क्रा' गुप्त रूप से रूस पहुंचता रहा। पीतर्सबुर्ग, मास्को आदि शहरों में मजदूरों तक अखबार पहुंचाने और पार्टी की लेनिनवादी 'इस्क्रा' नीति का समर्थन करने वाली कमेटियों-ग्रुपों का जाल बिछा देने में **बाबुश्किन, गुसेव, कालीनिन, बौमान** आदि पेशेवर क्रान्तिकारियों की अग्रणी भूमिका थी।

लेनिन के शब्दों में बाबुश्किन "*इस्क्रा के सबसे कर्मठ संवाददाता और जोशीले समर्थक थे।*" विशाल रूस के विभिन्न शहरों से रिपोर्टें इकट्ठा करके सम्पादकों को भिजवाना, अखबार का वितरण सुनिश्चित करना और इसके वितरकों-एजेण्टों के तंत्र के जरिए पार्टी का ताना-बाना खड़ा करना— इन सभी कामों में बाबुश्किन की अग्रणी भूमिका थी। एक बार दक्षिणी रूस के येकातेरीनोस्लाव शहर में इन्हीं कामों के दौरान उसे गिरफ्तार भी कर लिया गया, पर खिड़की की छड़ें काटकर वह जेल से भाग निकला और कोई भी विदेशी भाषा न जानने के बावजूद सीधे लन्दन, 'इस्क्रा' के आफिस पहुंच गया।

1903 में पार्टी की दूसरी कांग्रेस के समय बाबुश्किन सुदूर उत्तर में निर्वासित जीवन बिता रहा था। पर इस दौरान भी वह लगातार अध्ययन कर रहा था और अन्य निर्वासित मजदूरों में बोल्शेविज्म का प्रचार कर रहा था।

1905 में आम माफी से निर्वासन-दण्ड की समाप्ति हुई, पर इस समय तक साइबेरिया में भी क्रान्ति की आग फैलने लगी थी। बाबुश्किन पार्टी की इर्कुत्स्क कमेटी के सदस्य के रूप में वहां काम करने लगा।

1905-7 की क्रान्ति में उसने जमकर भागीदारी की। चिता नगर के हथियारबन्द विद्रोह का वह भी एक नेता था। उसी दौरान एक रेल डिब्बे में भरकर पांच साथियों के साथ चिता से हथियारों की एक बड़ी खेप ले जाते समय जारशाही के ताजीरी दस्ते ने उसे पकड़ लिया और गोली मार दी।

बाबुश्किन का जीवन इस बात का प्रमाण था कि उन्नत चेतना के मजदूर राजनीति और विचारधारा से लैस होकर नेतृत्वकारी क्षमताओं वाले संगठनकर्ता बन सकते हैं। ऐसे सर्वहारा चरित्र तैयार करके कोई भी पार्टी अपनी सफलता की एक बुनियादी गारण्टी हासिल करती है।

बाबुश्किन का जीवन भारत के क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं और वर्ग-सचेत मजदूरों के लिए भी अक्षय प्रेरणा का स्रोत है।

बाबुश्किन की मृत्यु की सूचना पार्टी के साथियों को बरसों बाद मिली। यह सूचना मिलने के बाद उनकी स्मृति में पार्टी-पत्र 'राबोचाया गजेता में लेनिन ने जो प्रसिद्ध लेख (निधन-सूचना) लिखा था, उसे हम यहां अलग से प्रकाशित कर रहे हैं।

• आलोक रंजन

वर्ग-सचेत मजदूरों के बहादुर बेटे जब एक बार अपनी मुक्ति के दर्शन को पकड़ लेते हैं; जब एक बार वे सर्वहारा क्रान्ति के मार्गदर्शक सिद्धान्त को पकड़ लेते हैं; तो फिर उनकी अडिग निष्ठा, शौर्य, व्यावहारिक जीवन की जमीनी समझ और सर्जनात्मकता उन्हें हमारे युग के नये नायकों के रूप में ढाल देती है। ऐसे लोग उस करोड़ों-करोड़ आम मेहनतकश जनसमुदाय के उन सभी वीरोचित उदात्त गुणों को अपने व्यक्तित्व के जरिए प्रकट करते हैं, जो इतिहास के वास्तविक निर्माता और नायक होते हैं इसलिए ऐसे लोग क्रान्तिकारी जनता के सजीव प्रतिनिधि चरित्र और इतिहास के नायक बन जाते हैं और उनकी जीवन-गाथा एक महाकाव्यात्मक आख्यान बन जाती है।

'बिगुल' के इस अनियमित स्तम्भ में हम दुनिया की सर्वहारा क्रान्तियों की ऐसी ही कुछ हस्तियों के बारे में उन्हीं के समकालीन किसी महान क्रान्तिकारी नेता या लेखक की संस्मरणात्मक टिप्पणी या रेखाचित्र समय-समय पर अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित करते रहेंगे। ये ऐसे लोगों की गाथाएं होंगी जिन्होंने शोषण-उत्पीड़न की निर्मम-अंधी दुनिया के अंधेरे से ऊपर उठकर जिन्दगी भर उस अंधेरे से लोहा लिया और क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र बन गये। वे क्रान्तिकथाओं के ऐसे नायक थे, जो इतिहास-प्रसिद्ध तो नहीं थे, पर जिनकी जिन्दगी से यह शिक्षा मिलती है कि श्रम करने वाले लोग जब ज्ञान तक पहुंचते हैं और अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढ़ लेते हैं तो फिर किस तरह अडिग-अविचल रहकर वे क्रान्ति में हिस्सा लेते हैं। उनके भीतर ढुलमुलपन, कायरता, कैरियरवाद, उदारतावाद और अल्पज्ञान पर इतराने जैसे दुर्गुण नहीं होते जो मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों से आने वाले कम्युनिस्टों में क्रान्तिकारी जीवन के लम्बे समय तक बने रहते हैं और पार्टी में तमाम भटकावों को बल देने में अहम भूमिका निभाते हैं।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि भारतीय मजदूरों के बीच से भी ऐसे ही वर्ग-सचेत बहादुर सपूत आगे आयेंगे। सर्वहारा वर्ग की पार्टी के क्रान्तिकारी चरित्र के बने रहने की एक बुनियादी शर्त है कि मेहनतकशों के बीच के ऐसे सम्भावनायुक्त तत्वों की राजनीतिक शिक्षा-दीक्षा करके उन्हें निखारा-मांजा जाये और क्रान्तिकारी कतारों में भरती किया जाये। —सम्पादक

इवान वसील्येविच बाबुश्किन

(निधन-सूचना)

• लेनिन

हम अभिशप्त काल में रह रहे हैं, जब ऐसी बातें संभव हैं: पार्टी का विलक्षण कार्यकर्ता, जिस पर सारी पार्टी को गर्व है, वह साथी, जिसने अपना सारा जीवन मजदूरों के ध्येय को अर्पित किया, लापता हो जाता है। और उसके निकटतम संबंधी, जैसे कि पत्नी और मां, घनिष्ठतम साथी बरसों तक यह नहीं जानते कि उसका क्या हुआ : कहीं कठोर श्रम-कारावास में वह हड्डियां गला रहा है या किसी जेल में उसने दम तोड़ दिया है या शत्रु के साथ टक्कर में वीरगति को प्राप्त हुआ है। यही इवान वसील्येविच बाबुश्किन के साथ हुआ, जिन्हें रेन्नेनकाम्फ ने गोली मार डाली। अभी हाल ही में हमें उनकी मृत्यु का पता चला है।

इवान वसील्येविच का नाम हमारे मन के निकट है, हमारे मन को प्रिय है, केवल हम सामाजिक-जनवादियों के मन को ही नहीं। जितने भी लोगों ने उन्हें जाना, सभी के मन में उनका तेज, उनकी गहन और प्रबल क्रान्तिकारी भावना, अपने ध्येय में उनकी निष्ठा और शब्दांडबर से दूरी देखकर उनके प्रति प्रेम और आदर जागा। पीटर्सबर्ग के इस मजदूर ने 1895 में दूसरे वर्ग-चेतन साथियों के साथ मिलकर नेवस्काया जस्तावा के इलाके में सेम्यान्निकोव और अलेक्सान्द्रोव कारखानों के व कांच फैक्टरी के मजदूरों के बीच जोरदार काम किया, मंडल गठित किये, पुस्तकालय खोले और सारा समय स्वयं भी पूरी लगन से शिक्षा पाता रहा।

उनके सारे विचार एक ही बात पर केंद्रित थे कि काम कैसे अधिक फैलाया जाये। 1894 के पतझड़ में सेंट पीतर्सबर्ग में निकाले गये **पहले प्रचार परचे** को, जो सेम्यान्निकोव कारखाने के मजदूरों को संबोधित था, तैयार करने में इवान वसील्येविच ने सक्रिय भाग लिया और खुद अपने हाथों से उसे बांटने का काम किया। जब सेंट-पीतर्सबर्ग में 'मजदूर वर्ग की मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाली लीग' गठित हुई, तो इवान वसील्येविच उसके एक सबसे सक्रिय सदस्य बने और अपनी गिरफ्तारी तक उसमें काम करते रहे। पीतर्सबर्ग में उनके साथ करते रहे पुराने साथियों—'इस्क्रा' के संस्थापकों—ने उनके साथ इस विचार पर सलाह-मशविरा किया था कि विदेश में ऐसा राजनीतिक समाचारपत्र स्थापित किया जाये, जो सामाजिक-जनवादी पार्टी की एकता और सुदृढ़ता बढ़ाने में सहायक हो, और इस विचार पर उनका जोरदार समर्थन पाया था। जब तक इवान वसील्येविच आजाद रहे, 'इस्क्रा' के पहले बीस अंक देखिये, शूया, इवानोवो-वोज्नेसेन्स्क, ओरेखोवो-जूयेवो तथा केन्द्रीय रूस के दूसरे स्थानों से ये सारी रिपोर्टें—इनमें प्रायः सभी इवान वसील्येविच के हाथों से गुजरीं। 'इस्क्रा' और मजदूरों के बीच घनिष्ठतम संबंध बनाने के लिए वे प्रयत्नशील रहे। वे 'इस्क्रा' के सबसे कर्मठ संवाददाता और जोशीले समर्थक थे। केन्द्रीय रूस से बाबुश्किन दक्षिण में, येकातेरीनोस्लाव नगर को चले गये (वहां उन्हें गिरफ्तार करके अलेक्सान्द्रोव्स्क जेल में रखा गया। वहां से अपने एक साथी के साथ खिड़की के सींखचे काटकर वे भाग निकले। एक भी विदेशी भाषा उन्हें नहीं आती थी, तो भी लन्दन पहुंच गये, जहां तब 'इस्क्रा' का संपादकीय कार्यालय था। बहुत सी बातें हुई थीं तब, बहुत से सवालों पर

(पेज 10 पर जारी)

पर्यावरण की चिन्ता या 15 लाख से भी अधिक मजदूरों की रोजी छीन लेने की साजिश?

(पेज 1 से आगे)

जरूरी है, पर यह बहुसंख्यक उत्पादक मेहनतकश आबादी को भूखों मारकर या उन्हें उजाड़कर ही हमेशा क्यों किया जाता है? प्रदूषण के लिए मुख्यतः जिम्मेदार धनिक आबादी के विरुद्ध कोई कदम कभी क्यों नहीं उठाया जाता? प्रदूषण हटाने के नाम पर यदि कारखाना बन्द करना है तो उनमें कार्यरत श्रमिक आबादी को वैकल्पिक रोजगार देना भी सरकार की ही जिम्मेदारी है। और सबसे बुनियादी बात तो यह है कि पर्यावरण के विनाश के लिए मूलतः उस पूंजीवादी उत्पादन तंत्र की अराजकता जिम्मेदार होती है, जो मुनाफे के लिए श्रम-शक्ति और प्रकृति को अंधाधुंध निचोड़ता और तबाह करता है। सच यह है कि पर्यावरण के प्रश्न पर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी शहरी समाज आज उस प्रतिक्रियावादी नजरिये से बुरी तरह प्रभावित है, जिसका प्रचार पूंजीवादी मीडिया के भोंपू और टट्टू खूब करते रहते हैं।

यह एक अलग से चर्चा का विषय है, पर यहां दिल्ली के लघु उद्योगों की बन्दी के पीछे भी मूल प्रश्न पर्यावरण का है ही नहीं।

सच तो यह है कि पर्यावरण के प्रश्न को अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में शर्त के रूप में शामिल करने के अमेरिकी दबाव का सिएटल में विरोध करने का दावा करने वाली केन्द्र की सरकार और दिल्ली राज्य की कांग्रेसी सरकार देशी-विदेशी एकाधिकारी घरानों के दबाव में पर्यावरण-सुधार की आड़ लेकर, न्यायपालिका के फैसले की मदद से छोटे उद्योगों को व्यवस्थित ढंग से तबाह करके एकाधिकारी पूंजी को निवेश के लिए नये क्षेत्र मुहैया कराने का कुचक्र रच रही हैं। यह बड़ी पूंजी द्वारा छोटी पूंजी को तबाह करने के साम्राज्यवादी नियम का ही एक और उदाहरण है। वैसे छोटे कारखानेदार कोई सहानुभूति के पात्र इन अर्थों में नहीं हैं कि मजदूरों को 30-30 रुपये की दिहाड़ी पर दस-दस घण्टे दासों की तरह खटाने में वे बड़े मालिकों से कहीं आगे हैं। अब ये छोटे परभक्षी बड़े परभक्षियों द्वारा तरह-तरह से निगले जा रहे हैं और बड़े परभक्षी भी अब अतिलाभ निचोड़ने के लिए आतुर होकर श्रमिकों को ठेका और दिहाड़ी पर रखकर छोटे उद्योगपतियों की ही तरह, या उनसे भी बदतर व्यवहार कर रहे हैं।

प्रश्न के उपरोक्त पहलू से अधिक महत्वपूर्ण यह पहलू है कि 15 लाख से भी कुछ अधिक मजदूरों के धीरे-धीरे बेरोजगार हो जाने से नये-नये उद्योग लगाने वाले देशी-विदेशी घरानों को श्रमशक्ति अत्यन्त सस्ती दरों पर उपलब्ध होगी और मजदूरों को वे मनमानी शर्तों पर निचोड़ सकेंगे। अन्यथा ऐसा नहीं है कि एक लाख से भी अधिक कारखाने बन्द करने के बजाय इस देश की सरकार और न्यायपालिका छोटे कारखाना मालिकों से 'एफ्लुएंट ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट' ही नहीं लगवा सकती थी! दरअसल सरकार की मंशा ही यही है कि ये लघु उद्योग किसी भी तरह से बंद हों और इसीलिए उसे खुद भी जो 15 प्लाण्ट स्थापित करने थे, उस दिशा में उसने कुछ नहीं किया।

और फिलहाल सरकार जो तरह-तरह के आश्वासन देने वाले बयान दे रही है, उसका कारण यह है कि वह इस काम को धीरे-धीरे, किश्तों में करना चाहती है। ऐसा इसलिए कि वह जानती है कि देश की राजधानी में 15 लाख से भी अधिक मजदूरों के परिवारों को एक साथ भूखों मरने के लिए सड़कों पर छोड़ देना राजधानी के शीशमहलों के सुख-चैन के लिए और इस हुकूमत की सेहत के लिए खतरनाक भी हो सकता है।

यहां हमें एक बार फिर तीन वर्षों पुरानी उस घटना की याद को ताजा कर लेना होगा जब सुप्रीम कोर्ट ने "हानिकारक और जहरीली" श्रेणी के 168 उद्योगों को बन्द करने या दिल्ली से बाहर ले जाने का आदेश दिया था, जिसपर 30 नवम्बर 1996 को अमल भी हो गया और 50,000 मजदूर बेकार हो गये। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बावजूद कुछ मजदूरों को छोड़कर अधिकांश को न काम मिला न ही मुआवजा। सवाल यह है कि सुप्रीम कोर्ट मजदूरों को काम या मुआवजे के अपने आदेश पर सरकार या पूंजीपतियों से अमल क्यों नहीं करा पाया?

168 कारखानों की बन्दी वाले मामले के पीछे की सच्चाई आज ही नहीं, उस समय भी मजदूर भली भांति समझते थे कि पर्यावरण पर फैसला मालिकों के लिए मुंहमांगी मुराद था, क्योंकि वे खुद ही कारखानों को बन्द या स्थानान्तरित करना चाहते थे। जो काम मजदूरों के संगठित विरोध के भय से वे नहीं कर पा रहे थे, उसके लिए सुप्रीम कोर्ट के निर्देश ने ढाल का काम किया। उन 168 उद्योगों में से कुछ के मालिक कम घाटा वाले उद्योग चलाने के बजाय मंहगी शहरी जमीन का अन्य इस्तेमाल करके ज्यादा मुनाफा कमाना चाहते थे। कुछ इन कारखानों से पूंजी निकालकर ज्यादा मुनाफा वाले कारोबारों में निवेश करना चाहते थे और कुछ अन्य कारखाना अन्यत्र स्थानान्तरित करके पुराने मजदूरों के हटाकर बहुत कम मजदूरी पर दिहाड़ी और ठेका पर नये मजदूर रखकर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना चाहते थे। राज्य सरकार के सहयोग और न्यायपालिका की "पर्यावरण-चिन्ता" ने उनके मन की मुराद पूरी कर दी।

इस बार भी आड़ पर्यावरण को सुधारने की ही ली गयी है। फर्क सिर्फ यह है कि बन्दी के शिकार होने वाले लघु उद्योगों के मालिक ऐसा नहीं चाहते हैं बल्कि देशी-विदेशी बड़ी पूंजी के मालिक ऐसा चाहते हैं। जहां तक मजदूरों का सवाल है तो उनके लिए पहले और अब की स्थिति में यह फर्क है कि 1996 में 50,000 मजदूर बेकार हुए थे और इस बार 15 लाख से भी अधिक मजदूर बेकार होने वाले हैं।

सच्चाई यह है कि पर्यावरण के सारे हल्ले-गुल्ले के पीछे सवाल पर्यावरण का है ही नहीं, बल्कि यह इजारेदार बड़ी पूंजी को विस्तार करने का मौका देने और उसे ज्यादा से ज्यादा सस्ती दरों पर श्रमशक्ति को निचोड़ने का अवसर देने के लिए रची गई एक साजिश है। भूमण्डलीकरण के बवण्डर में करोड़ों मजदूरों की बेकारी-तबाही का जो सिलसिला लगातार एक या दूसरे रूप में आगे बढ़ना है; यह उसी की एक कड़ी मात्र है।

पूंजीवाद का बढ़ता संकट उसे अपने एकमात्र विकल्प पर निर्मम आचरण के लिए बाध्य कर रहा है और यह स्थिति मजदूरों के सामने भी बस एक ही विकल्प छोड़ रही है—या तो वह भूखे-अधभूखे, बेघर-बेदर गुलामों की स्थिति में जीने के लिए तैयार रहें, या फिर नये सिरे से उठ खड़े हों, संगठित हो जायें और जुझारू संघर्षों की तैयारी में जुट जायें। ●

तराई के उद्योगपतियों की बैठक में होण्डा मजदूरों पर सीधा हमला

(पेज 1 से आगे)

दिया गया। तबसे जहां एक तरफ प्रबन्धकों द्वारा श्रमिकों पर दमनात्मक कार्रवाइयां और बाहरी तत्वों से उत्पादन का प्रयास जारी है, वहीं होण्डा श्रमिक जीवन-मरण का संघर्ष कर रहे हैं। इस बीच प्रबन्धकों के अड़ियल रुख और जिला प्रशासन व श्रम विभाग की अकर्मण्यता के कारण तीन दर्जन से ज्यादा द्विपक्षीय व त्रिपक्षीय वार्ताएं असफल रही हैं। उधर इलाके के कारखानेदारों ने अपनी वर्गीय पक्षधरता दिखाते हुए गीदड़भभकियां देना शुरू कर दिया है।

चैम्बर अध्यक्ष की बयानबाजियां पहले से ही जारी होती रही हैं। अपने पहले के बयानों में होण्डा में तालाबन्दी के लिए श्रमिक यूनियन को ही जिम्मेदार ठहराते हुए चैम्बर अध्यक्ष राजीव घई ने कह डाला था कि यूनियन की नाजायज मांगों व अनावश्यक दबाव के चलते इस उद्योग को बन्द कर देना पड़ा। उन्होंने कहा कि इस हड़ताल से क्षेत्र का औद्योगिक वातावरण दूषित हो रहा है। श्री घई ने धमकी भरे दो टूक शब्दों में कह डाला कि 'श्रमिकों द्वारा हठधर्मीपूर्वक की जा रही नाजायज मांगों को पूरा करने में अब कोई भी उद्योग सक्षम नहीं है।'

उधर 17 नवम्बर को जिलाधिकारी, पुलिस अधीक्षक आदि की मौजूदगी में सम्पन्न चैम्बर की बैठक में चैम्बर अध्यक्ष ने होण्डा आन्दोलन को नाजायज करार देते हुए प्रशासन से मांग की कि कंपनी अधिकारियों को बाहर से श्रमिकों को लाकर कम्पनी चलाने की सुविधा प्रदान की जाए। इस पर सभी उद्योगपति एकमत थे। बैठक में मौजूद कारखानेदारों ने श्रमिकों के खिलाफ जमकर भड़ास निकाली। रामाविजन कारखाने के महाप्रबन्धक बी.सी.शर्मा. ने क्षेत्र के रामाविजन, आनन्द निशिकावा आदि कारखानों में आन्दोलन की जिम्मेदारी होण्डा श्रमिकों पर थोपते हुए यह तक कह डाला कि होण्डा प्रशासन ने सदैव श्रमिकों के दबाव में नाजायज समझौते करके अन्य कारखानों का नुकसान ही किया है। उन्होंने श्रमिकों से आगे किसी भी प्रकार का समझौता न करने की सलाह तक दे डाली।

"चन्द स्वार्थी तत्व श्रमिकों को भड़काकर अशान्ति फैला रहे हैं; भोले-भाले श्रमिकों के रोजगार से खिलवाड़ कर रहे हैं।"
—चैम्बर अध्यक्ष

रामाविजन तराई क्षेत्र का वह कारखाना है जहां श्रम कानूनों की खुलेआम धज्जियां उड़ाई जाती हैं। जहां मजदूरों को 12-12 घण्टे की शिफ्टों में हाड़तोड़ मेहनत करनी पड़ती है, जहां यूनियन बनने के हर प्रयास को सख्ती से कुचला जा रहा है। जिसके मालिकान ने आजतक अपने किसी भी कारखाने में यूनियन नहीं बनने दी है। यह वही कारखाना है जहां मजदूरों के न्यायपूर्ण जुझारू लम्बे आन्दोलनों को बेरहमी से कुचलने के लिए कुख्यात प्रबन्धकों की नीतियों की साक्षी पूरे क्षेत्र की जनता है।

यही नहीं, यहां चुनाव की सार्वजनिक छुट्टी के एवज में साप्ताहिक अवकाश के दिन काम करवाया गया। यह जगजाहिर बात है कि यहां के प्रबन्धकों के मजदूर विरोधी बयान समय बा समय आते ही रहते हैं। फिर होण्डा के मजदूर तो रामाविजन के मजदूरों के हर न्यायपूर्ण संघर्ष में कंधे से कंधा मिलाते रहे हैं।

यहीं हम इस कारखाने के एक और 'सिस्टर कन्सर्न' 'शिवा पेपर मिल' (रामपुर) में घटित एक हृदयविदारक घटना का उल्लेख करना उचित समझते हैं। उक्त पेपर मिल में विगत एक अक्टूबर को एक मजदूर उदय राज एक रोलर की चपेट में आ गया और उसकी मृत्यु हो गयी। प्रबन्धकों ने आनन-फानन में उसका दाहसंस्कार करने के बाद उसका मिलकर्मी होने का प्रमाण तक नष्ट कर दिया। यही नहीं, कारखाना परिसर की ही मजदूर कॉलोनी में रह रहे उसकी पत्नी और तीन मासूम बच्चे अपने पति/पिता के अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सके। न कोई थाना-पुलिस, न ही पोस्टमार्टम का झमेला। उल्टे बिना किसी मुआवजे के बेसहारा पत्नी और बच्चों से जबरन क्वार्टर खाली कराके सड़क पर भटकने के लिए छोड़ दिया गया।

क्या चैम्बर बताएगा कि इस जापानी कारखाने में 26 करोड़ का वार्षिक मुनाफा किसके दम पर होता है? क्या चैम्बर रामपुर के पेपरमिल में रोलर में पिसकर मरे मजदूर के पक्ष में बयान देगा, उसे मुआवजा दिलाएगा?

अगले दिन, शोकाकुल और उद्वेलित मिल मजदूरों ने जब विरोध स्वरूप काम करने से इन्कार करते हुए न्याय की गुहार की तो प्रबन्धकों ने सभी मजदूरों को काम से निकाल बाहर करने की धमकी दे डाली। नौकरी जाने के डर से धीरे-धीरे, भारी मन से मजदूर काम पर वापस लौट गये। आज भी उनके भीतर भारी आक्रोश व्याप्त है लेकिन यूनियन के अभाव में वे किंकर्तव्यविमूढ़ हैं। ज्ञातव्य हो कि यहां 22 वर्षों से यूनियन बनाने के सभी प्रयासों को रौंदा जा चुका है। अभी कुछ माह पूर्व ही ऐसे ही एक प्रयास को पुनः विफल करते हुए प्रबन्धकों ने सात मजदूरों की छुट्टी कर दी थी। अब इस घटना का विरोध करने वाले अगुआ मजदूरों को कारखाने से निकाला जा रहा है!

क्या चैम्बर इस मजदूर की मौत और हत्यारे प्रबन्धकों के खिलाफ बयान दे सकेगा, बेसहारा पत्नी और मासूम बच्चों को न्याय दिला सकेगा? क्या, वेतन भी न पाने वाले एच.एम.टी. के श्रमिकों के पक्ष में चैम्बर बैठकें करेगा? होण्डा में उत्पादकता दोगुनी करने की बात करने वाले चैम्बर अध्यक्ष क्या यह बता सकेंगे कि इस जापानी कारखाने को 26 करोड़ का वार्षिक मुनाफा किसके दम पर होता है? जिस कारखाने के प्रबन्धक 80-85 हजार रुपये प्रतिमाह तक वेतन और हजारों रुपये की अन्य सहूलियतें पाते हों वहां के मजदूरों को मिलने वाले महज 4-5 हजार रुपये मासिक वेतन से तराई के पूंजीपतियों की छाती क्यों फटने लगी? उन्हें यह तो नहीं दिखाई देगा कि इस क्षेत्र के तेल मिलों-चावल मिलों-प्लाईवुड कारखानों और अन्य तमाम कारखानों में 12-12 घण्टे हाड़तोड़ मेहनत के एवज में मजदूरों को महज मामूली दिहाड़ी पर ही सन्तोष करना पड़ रहा है!

तराई के इन पूंजीपतियों को इसी बात का तो खतरा है कि कहीं होण्डा मजदूरों की एकता से उनकी बेलगाम अन्धी लूट पर अंकुश न लग जाय। जब भी मजदूर अपने हक-हकूक के लिए एकजुट होने लगते हैं, इन पूंजीपतियों की धड़कनें रुकने लगती हैं, बौखलाहट बढ़ती जाती है, उनका वहशीपन बढ़ता जाता है। वे मजदूरों पर चौतरफा हमला बोलने लगते हैं, उनके "चैम्बर" सक्रिय हो जाते हैं।

ऐसे हालात में मजदूरों को भी अपनी संग्रामी एकजुटता बढ़ा देनी चाहिए, अपने जुझारू संघर्षों से इन लुटेरों के लूटतंत्र का क्रिया कर्म करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। ●

झूठ ऐसा, जिसका न सिर न पांव

ऊधमसिंहनगर के उद्योगबन्धुओं की बैठक में तालाबन्दी के शिकार 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स' के श्रमिकों को सीधा 'टारगेट' बनाते हुए कारखानेदारों के झूठे तथ्यों के सामने सच्चाई को भी शर्म आने लगी, जबकि जिलाधिकारी, पुलिस अधीक्षक व लेबर अफसर आनन्द लेते रहे।

बैठक की एक बानगी देखिए।

बैठक में उपस्थित रामाविजन प्रा. (लि.) के महाप्रबन्धक बी.सी.शर्मा ने कहा कि होण्डा के प्रबन्धतन्त्र ने श्रमिकों के दबाव में उनका वेतन 8 हजार रुपये से बढ़ाकर 24 हजार रुपये कर दिया है। वहां मौजूद जिलाधिकारी नरेन्द्र भूषण ने भी शर्मा की बात का समर्थन करते हुए व्यंग्यात्मक अंदाज में कहा कि उनका वेतन भी लगभग इतना ही है। यदि इसमें थोड़ी बढ़ोत्तरी हो जाय तो मैं सरकारी नौकरी छोड़कर होण्डा सील में नौकरी कर लेता। बैठक में होण्डा के तीन प्रबन्धक भी उपस्थित थे।

सच्चाई यह है कि, लम्बे संघर्षों के बाद, आज भी होण्डा के श्रमिकों का औसत वेतन साढ़े पांच हजार है। सामान्य तौर पर श्रमिकों का वेतन 4300 रुपये है। अब इस बेसिर-पैर के झूठ का क्या अर्थ है?

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक: डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता: द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006. सम्पादकीय उपकार्यालय: जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।